देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—२

चीनी यात्री सुंगयुन

का

यात्रा-विवरण

अनुवादक

जगन्मोहन वर्म्मा

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

द्वारा प्रकाशित।

प्रथम संस्करण २०००]   संवत् १९७७   [मूल्य १)

भूमिका

सुगयुन का यात्रा विवरण बहुत ही छोटा ग्रंथ है। इसका अनुवाद बील ने सुयेनच्वांग के यात्रा-विवरण की भूमिका में फाहियान के यात्रा-विवरण के अनुवाद के साथ दिया है। हमने इसके कुछ अंश को फाहियान के यात्रा विवरण की भूमिका में दिया था, पर ग्रंथ में भारत के पश्चिम-सीमागत देशों का अच्छा वर्णन देख हम पूरे यात्रा-विवरण का अनुवाद करने को बाधित हुए। वही आज पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें यथास्थान टिप्पणियाँ दे दी गई हैं और अंत में एक परिशिष्ट लगा दिया गया है जिसमें उन पाँच प्रधान जातकों की संक्षेप से कथा लिख दी गई है जिनके घटना-स्थलों का उल्लेख इस जातक में है। उद्यानादि सीमास्थ देशों का अच्छा वर्णन होने के कारण यह ग्रंथ छोटा होने पर भी ऐतिहासिकों के काम का है।

शांतिकुटी,
कार्तिक शुक्ल ९, सं० १९९६

जगन्मोहन वर्म्मा

विषय-सूची

	पृष्ठांक
उपक्रम	१—२३
बील की प्रस्तावना	१—५
१—प्रस्तावना	१
२—चौ लिंग	१
३—तुर्किस्तान	२
४—शैनशेन	३
५—स्सोमो	३
६—मो	४
७—हानमो	५
८—खुतन	६
९—यारकद	८
१०—हानपानटो	९
११—सुगलिंग	१०
१२—पो हो	११
१३—यथा (दूध)	१२
१४—पोस्मे	१४
१५—शियमी	१५

१६—पोलूलाई १५
१७—उद्यान १६
१८—उद्यान के तीर्थस्थान १६
१६—पादुका २०
२०—व्याघ्री को शरीरदान २१
२१—मोहिड २२
२२—शेनशी वा वंकगिरि २२
२३—गांधार राज्य २५
२४—तक्षशिला २६
२५—पुरुषपुर २६
२६—गांधार की राजधानी ३२
२७—शिविक राज ३६
२८—गोपालगुहा ३८
२६—संग्रहकर्ता का उपसंहार ३६
३०—परिशिष्ट ४१
१—व्याघ्रीजातक ४१
२—शिविजातक ४३
३—श्येनकपोत ४६
४—चंद्रप्रभ ४७
५—विश्वंतर वा सुदान ४६

उपक्रम

— o —

जब से चीनवालों को बौद्धधर्म का उपदेश मिला तब से चीन के यात्री भारतवर्ष की ओर तीर्थयात्रा करने आते रहे। इन यात्रियों में से फाहियान और सुयेनच्वांग (हियनसाग) के अतिरिक्त अन्य यात्रियों के नाम हमारे देश में बहुत कम लोग जानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन अज्ञातनामा या अपरिचितनामा यात्रियों में ईसिंग की यात्रा के विवरण को छोड़कर—सो भी यदि उसमें से वह अंश निकाल दिया जाय जो उसने 'कर्मपद्धति' पर लिखा है तो वह भी—शेष सब अत्यंत स्वल्प हैं। इन सब में सुयेनच्वांग का ही यात्राविवरण सब से बड़ा और विस्तृत है। उसके सामने फाहियान का यात्राविवरण जो अत्यंत प्रसिद्ध है और जिसका अनुवाद मैं पाठकों के सामने उपस्थित कर चुका हूँ, एक अंशमात्र वा षोडशांश के बराबर भी नहीं है। पर इन अज्ञातनामा यात्रियों के यात्रा-विवरण, चाहे वे भौगोलिक दृष्टि से देखे जाँय चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से, सब बड़े काम के हैं। इन्हीं अज्ञातनामा यात्रियों में सुगयुन और हुईसाग भी हैं जिनका यात्राविवरण यहाँ पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है।

हम उचित समझते हैं कि इस छोटे से यात्राविवरण पर

कुछ कहने के पहले हम अपने हिंदी पाठकों के सामने उन अज्ञातनामा यात्रियों का कुछ परिचय तो दे दें जो समय समय पर हमारे देश में आते रहे हैं कि जिसमें पाठकों को यह ज्ञात हो जाय कि वे बेचारे कितना कष्ट झेल कर हमारे देश में आए। इसमें संदेह नहीं कि धर्म की पिपासा बड़ी प्रबल होती है, वह अर्थ की पिपासा से, जिससे प्रेरित हो आज कल लोग एक देश से दूसरे देश में व्यापार के उद्देश से जाते हैं, कहीं प्रबल है। जिस समय लोग आए थे मार्ग अत्यंत भयावह और अनेक कंटकों से पूर्ण था। वे यहां किसी सुख विशेष के लाभ के लिये नहीं आए थे, केवल अपने अंतःकरण में धर्म के पवित्र भाव को लेकर आए थे, और मार्ग की कठिनाइयों को झेलते हुए यहां तक पहुँचे थे। अतः हमारी समझ में तो उनका वह साहस आज कल के लोगों के साहस से कहीं अलौकिक और प्रशंसनीय था। उनमें तमोगुण तथा रजोगुण का कहीं लेश भी नहीं था, वे विशुद्ध सात्विक थे।

इन यात्रियों में यात्राविवरण की दृष्टि से फाहियान पहला यात्री है। इसके पूर्व जो यात्री आए थे वे उद्यान से इधर नहीं बढ़ते थे। फाहियान जब श्रावस्ती पहुँचा था तो उससे, यह जानकर कि वह चीन देश से आया है लोगों ने आश्चर्यपूर्वक यह कहा था कि आज तक हम लोगों ने किसी को चीन से यहां आते हुए नहीं देखा है और न सुना ही है। उसकी यात्रा के संबंध में हमें सिवाय इसके कुछ अधिक लिखने की

आवश्यकता नहीं है कि वह सन् ४०० ईस्वी में भारतवर्ष की ओर चला था और सन् ४१४ में अपने देश को लौट गया था।

२—दूसरा यात्री जो फाहियान के अनंतर आया वह ताव-युग था, पर यह कब आया इसका ठीक पता नहीं चलता। इसमें संदेह नहीं कि वह फाहियान के पीछे आया और पेशावर से आगे नहीं बढ़ा। उसके यात्राविवरण से सुगयुन और हुईसांग के यात्राविवरण के संकलनकर्ता ने यथास्थान टिप्पणीवत् जहाँ जहाँ मतभेद था उद्धृत किया है।

३—तो-यिंग-यट चीनी देश का रहनेवाला था। वह पाँचवीं शताब्दी में आया था और गांधार तक आकर लौट गया था। इसका उल्लेख सुगयुन ने शेनशी वा सुदान पर्वत के प्रसंग में 'पोकीन' विहार के वर्णन में किया है।

४—सुगयुन और हुईसांग—ये दोनों चीनी महारानी के आदेशानुसार सन् ५१७—१८ में महायान की पुस्तकों की खोज में आए थे और सन् ५२१ में लौटे थे। इन्हीं का यात्राविवरण आज आपके सामने उपस्थित किया जाता है। इनके विषय में आगे लिखा जायगा।

५—सुयेनच्वांग वा हियेनसांग—यह सन् ६२९ में भारतवर्ष की ओर चला और भारतवर्ष में १५-१६ वर्ष रह कर तथा संस्कृत विद्या में पांडित्य प्राप्त कर चीन लौटा। इसका लिखा हुआ यात्राविवरण, बारह खंडों में, एक बृहद् ग्रंथ है जो यथावसर पाठकों के सामने उपस्थित किया जायगा।

६—हुइनि—यह कोरिया का रहनेवाला था और सन् ६३८ मे चांगगान से भारतवर्ष को आया था। इसने नालंद के विद्यालय में अध्ययन किया था। इसके हाथ की लिखी अनेक सूत्रों की प्रतियां ईसिंग को मिली थीं। इसने भारतवर्ष में आकर अपना नाम आर्य्यावर्त रखा था। यह नालंद ही में सत्तर वर्ष की अवस्था में शरीर त्याग कर परलोक सिधारा था।

७—हुयेनचिउ—यह तोचो प्रदेश के सिनचांग नगर का रहनेवाला था। यह चीन देश की राजधानी मे संस्कृत पढ़ता था और वहीं से तिब्बत होते हुए उत्तरीय भारत में आया था। इसने जालंधर पहुँच चार वर्ष संस्कृत भाषा अध्ययन कर चार वर्ष महाबोधि संघाराम में विद्याध्ययन किया। फिर यह नालंद के विद्यालय में गया। वहां तीन वर्ष रहकर अनेक स्थानों से होता हुआ लोयांग गया। वहां कुछ दिन रहकर वह सन् ६६४ मे काश्मीर आया। वहां एक लोकायतिक ब्राह्मण से उसकी मित्रता होगई। उसे अपने साथ लेकर वह लोयांग को चला। तिब्बत की सीमा तक ज्यों त्यों पहुँचा। वहां चीनी दूत मिला। उसके साथ अपने मित्र लोकायतिक को लिये वह महाराष्ट्र में आया। महाराष्ट्र देश में तीन वर्ष रह दक्षिण देश होता हुआ नालंद विश्वविद्यालय में गया। वहां ईसिंग से उसकी भेंट हुई। फिर वहां से अन्य स्थानों में होता हुआ वह नेपाल से होकर जाना चाहता था पर राह में चोरों और डाकुओं के भय से वह जा न सका और राह ही से लौट कर गृध्रकूट गया। गृध्रकूट से

वेणुवन होता हुआ मध्य भारत गया और वहा रह कर साठ वर्ष की अवस्था में परलोक सिधारा। इसने अपना नाम प्रकाशमति रखा था।

८—सुयेनताई—यह कारिया का रहनवाला था। यह सन् ६५० म तिब्बत और नेपाल होता हुआ मध्य भारत में आया। यह बोधिद्रुम का दर्शन और पूजन कर तुखार देश मे गया, वहा चाउहो नाम के एक और चीनी भिक्षु से उसकी भेट हुई। उसके साथ वहा से महाबोधि सघाराम में आया। महाबोधि सघाराम से अकेला चीन देश को लौट गया। यहा इसने अपना नाम सर्वज्ञानदेव रखा था। इसके साथ शुयेनहो नामक एक और यात्री आया था, पर वह यहीं मर गया था।

९—चाउही—इसने अपना नाम श्रीदेव रखा था। यह तिब्बत से होकर भारतवर्ष मे आया था और इसने महाबोधि सघाराम और नालद के विश्वविद्यालय में कई वर्ष तक सस्कृत का अध्ययन किया था। यहा से महायान के सूत्रों को पढ़कर यह दाववन सघाराम में गया और वहां विनय पिटक और व्याकरण शास्त्र का अध्ययन कर महाबोधि सघाराम मे आया। वहा उसने चीनी भाषा में वहा का इतिहास लिखा। इस का परलोकवास भी इसी देश में हुआ।

१०—सिपिन—यह सुयेनचाउ के साथ तिब्बत और नेपाल होकर उत्तर भारत में आया और यहा आकर उसने सस्कृत का अभ्यास आम्रकोभ के दाववन नामक सघाराम मे किया। यहीं

चाउही से उससे भेंट हुई। यह संस्कृत का पंडित होने के अतिरिक्त तंत्रशास्त्र का अच्छा अभ्यासी था। यह रोगग्रस्त हो गया और इसी देश में परलोक को सिधारा।

११—ईसिंग—यह सुयेनच्वांग के परलोक सिधारने पर सन् ६७१ में भारतवर्ष को चला और ६७३ में ताम्रलिप्त में पहुँचा। इसने नालंद के विश्वविद्यालय में संस्कृत विद्या का अध्ययन किया। लौटते समय यह सुमात्रा होकर चीन देश में पहुँचा। इसका यात्राविवरण पृथक् मिलता है। यथावकाश उसका अनुवाद उपस्थित किया जायगा।

१२—बुद्धधर्म—यह तुखार देश का रहनेवाला था। यह चीन देश के अनेक स्थानों में होकर भारतवर्ष आया था। ईसिंग के साथ इसकी भेंट नालंद के विश्वविद्यालय में हुई थी। नालंद में बहुत दिन रह कर यह चीन देश को लौट गया था।

१३—कोरिया के दो भिक्षु चांगगान से होकर भारतवर्ष आए थे। ये श्रीभोज में पहुँचे थे और वहां कुछ काल तक रह कर अपने देश को लौटे जाते थे पर सुमात्रा में इनका देहत्याग हो गया।

१४—ताउफांग—यह पिंगचाव का रहनेवाला था। यह चीन से नेपाल होकर भारतवर्ष मे आया और अनेक तीर्थस्थानों से होकर उसी मार्ग से चीन को लौट गया।

१५—पिंगचाव का एक और भिक्षु जिसने अपना नाम चंद्रदेव रखा था। यह सन् ६४६ में भारतवर्ष में आया और बोधिसंघाराम

में होता हुआ नालद में आया। वहा कुछ काल रह कर यह राज-सघाराम मे गया और वहा अनेक ग्रथो का अध्ययन करता रहा। वह सस्कृत विद्या पढ अपने देश को लौट गया था।

१६—उगपो —यह सिपिन के साथ मध्य भारत मे आया। इसने सिनची के सघाराम में सस्कृत पढना आरभ किया था पर पढ न सका। यह नेपाल होकर अपने देश को जा रहा था कि वहीं मर गया। इसने अपना नाम मतिसिंह रखा था।

१७—सुयेन-हुई—यह चीन देश से उत्तर भारत मे आया। वहा से काश्मीर गया। उस समय वहा का राजा बौद्ध-धर्मानुयायी था। वहा कई वर्ष रह कर वह दक्षिण देश को गया। वहा बोधिचैत्य का दर्शन कर नेपाल मे होकर चीन को लौटा जा रहा था कि नेपाल ही में उसका देहात हो गया।

१८—लुग नामक एक भिक्षु तिब्बत से भारतवर्ष आया। यह तीर्थयात्रा करता हुआ लौटकर गाधार पहुँचा और वहीं शरीर छोड कर परलोक सिधारा।

१९—मिग-युएन नामक भिक्षु ईचाउ का रहनेवाला भारतवर्ष में आया और कलिग से होकर लका गया। वहा से चीन लौट गया।

२०—चानकी—यह चीन से भारत में आया और श्रीभोज में रहा। इसने सस्कृत विद्या का अध्ययन किया था।

२१—मोक्षदेव—यह चीन से भारतवर्ष मे आया और तीर्थाटन

करता हुआ महाबोधि संघाराम में पहुँचा। वहीं रह कर उसने अपना सारा जीवन व्यतीत किया।

२२—कुई-चुंग—सिंहल द्वीप में समुद्र से आया। वहां से होकर भारतवर्ष में आया। तीर्थाटन करता हुआ राजगृह पहुँचा और वेणुवन में ठहरा। यहीं रोगग्रस्त होकर मर गया।

२३—सिनचिउ—यह चीन देश से पंजाब में आया। इसने अपना नाम चरितवर्म्मा रखा। वहां के 'चिंची' नामक विहार में यह रहता था। इसी संघाराम में उसने अपने व्यय से रोगियों के लिये एक गृह बनवाया था। यहीं रोगग्रस्त होकर मर गया। इसके साथ एक और चीनी यात्री जिसका नाम चोहिंग था आया था। वह इसीके साथ रहता था और उसी संघाराम में उसने अपना शरीर छोड़ा।

२४—एक चीनी अपने देश से वर्म्मा में गया। वहां प्रव्रज्या ग्रहण कर उसने अपना नाम दीप रखा। वर्म्मा से वह लंका गया और वहां से ताम्रलिप्त आया। उसने भारतवर्ष में बारह वर्ष तक संस्कृत विद्या का अध्ययन किया। वहां से वह कुशनगर परि-निर्वाण स्तूप का दर्शन करने गया और वहीं परलोक को सिधारा।

२५—समरकंद का रहनेवाला एक मनुष्य चीन गया। वहां उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। चीन से वह भारतवर्ष आया और गया में महाबोधि चैत्य और वज्रासन का दर्शन कर बोधिचैत्य के पास उसने बुद्धदेव और बोधिसत्व की मूर्ति बनाई। वहां से वह चीन लौट गया। उन दिनों में कोचीन में अकाल

पड़ा था। वहाँ वह लोगों को अन्न देने के लिये नियुक्त हुआ। वह बड़ा ही दयालु था। वहीं अकाल पीड़ितो की सेवा करते हुए उसने देहत्याग किया। चीनी उसे चिथानेवाला बोधिसत्व कहते हैं। उसने अपना नाम सर्ववर्म्मा रखा था।

२६—यान-युन—चीन से समुद्र होकर कलिंग आया और वहीं रहता हुआ परलोक सिधारा।

२७—ई-हुई—लोयाग में रहता था। यह भारतवर्ष मे बौद्ध धर्म की पुस्तकों की खोज में आया और अनेक ग्रंथो की प्रतिलिपि करके लौट गया।

२८—तीन चीनी उद्यान जाने के लिये नेपाल की राह से आए और उद्यान में पहुँच कर परलोक को सिधारे।

२९—हुइलुन—यह कोरिया का रहनेवाला था। यह भारतवर्ष में आया था और गगा के किनारे दस वर्ष रह कर उसने अपना नाम प्रज्ञावर्म रखा था। ईत्सिंग ने लिखा है कि यह "गगा के किनारे के देश से उत्तर ओर चला और तुषार चैत्य पर पहुँचा। यह तुषार चैत्य देशवासियों ने वहा के श्रमणों के लिये बनवाया है। चैत्य के पश्चिम कपिश चैत्य है। श्रमण हीनयानानुयायी हैं। कपिश चैत्य को गुणचरित चैत्य भी कहते हैं।

"महाबोधि के पूर्व दो मंजिल पर 'किउलु-किया' नाम का एक विहार है। यह विहार दक्षिण के एक राजा ने बनवाया है। इस विहार के श्रमण अकिंचन होने पर भी विनय के नियमों का यथार्थ रूप से पालन करते हैं। अभी थोड़े दिन हुए दक्षिण के

आदित्यसेन राजा ने पुराने विहार के पास एक विहार बनवाया है। दाक्षिणात्य इसी नए विहार में रहते हैं।

"इस विहार से चालीस मंजिल पर गंगा के किनारे मृगदाव विहार है। उसके पास ही एक खंडहर है। उसे चीन का विहार कहते हैं। कहते हैं कि चीन के राजा श्रीगुप्त ने इसे चीन देश के श्रमणों के लिये बनवाया था। चीन देश से महाबोधि विहार के दर्शन के लिये २० भिक्षु आए थे, उन्हीं के लिये यह विहार बनवाया गया था। भिक्षुओं के शुभाचरण से प्रसन्न हो राजा ने उनके व्यय के लिये बीस गांव दिए थे। यह सब भूमि अब देववर्मा राजा के अधिकार में है। पर यदि कोई चीन देश का भिक्षु यहां आकर रहे तो वह उसे देने को तैयार है। वज्रासन के पास महाबोधि विहार सिंहल देश के एक राजा ने बनवाया है। वह लंका के यात्रियों के लिये बना है। महाबोधि से कुछ दूर नालंद का विहार है। उसे श्रीशक्रादित्य ने बनवाना आरंभ किया था। पर वह किसी कारण से उसके समय में बनकर तैयार न हो सका। उसके वंशधरों ने उसे बनवा कर पूरा किया। जंबूद्वीप में यह विहार सबसे बड़ा है। इसकी वास्तु तीन तलों की है और प्रायः बारह फुट ऊँची है।

"विहार के प्रधान मंडप के पश्चिम द्वार पर एक बड़ा स्तूप है और अनेक छोटे छोटे चैत्य हैं। यह स्तूप और चैत्य बड़ा धन लगाकर बने हैं।

"विहार का कर्मदान बड़ा बूढ़ा है। उसके सामने विहार के

नायक वा महत का प्रभाव उतना नहीं है। वह उसका बडा मान करता है।

"इस विहार मे काल के ज्ञान के लिय जलघडी है। रात के तीन भाग किए गए हैं। पहले और अत के भागों में धर्मचर्चा होती है। मध्य मे भिक्षु जैसा चाहे सोते वा प्रार्थना करते हैं।

"इस विहार को श्रीनालद विहार कहते हैं। नाग नद के नाम पर इसका नाम नालद पडा है।

"विहार का द्वार पश्चिमाभिमुख है। सिहद्वार से निकलते ही सौ पग पर १०० फुट ऊँचा एक बडा स्तूप पडता है। लोकनाथ ने इसी स्थान पर ऊँचा चातुर्मास्य के तीन महीने बिताए थे। सस्कृत में इस स्तूप को 'मूलगधकुटी' कहते हैं। उत्तर पचास पग पर पूर्व दिशा मे इससे भी बडा स्तूप है। इसे बालादित्य ने बनवाया था। भीतर धर्मचक्र-प्रवर्त्तन के समय की बुद्धदेव की एक मूर्ति है। दक्षिण पश्चिम एक छोटा दस फुट ऊँचा चैत्य है। यहा ब्राह्मण ने हाथ में चिडिया लेकर प्रश्न किया था।

"मूलगधकुटी के पश्चिम बुद्धदेव के दतधावन का पेड है। पास ही बुद्धदेव के चक्रमण का स्थान है। यह दो हाथ चौडा, चौदह पद्रह हाथ लबा और दो हाथ ऊँचा है। पत्थर पर जहाँ जहाँ पैर रखा था फुट भर ऊँचे चौदह पद्रह कमल के फूल बने हैं।

"नालद से राजगृह ३० ली पर पडता है। गृध्रकूट और वेणुवन राजगृह के पास हैं। महाबोधि दक्षिण पश्चिम मे पडता है। वहाँ तक पहुँचने में सात स्थानों पर ठहरना पडता है (सात मजिल

लगते हैं)। वैशाली दो मंजिल पर है। मृगदाव बीस मंजिल पड़ता है। ताम्रलिप्त साठ सत्तर मंजिल पर है। चीन जाने में ताम्रलिप्त में नौका पर चढ़ना पड़ता है। नालंद में ३५०० श्रमण रहते हैं। राजाओं के लगाए हुए गाँवों से सब व्यय चलता है।"

३०—तावलिन—यह किंगचाव का रहनेवाला था, समुद्र से होकर कलिंग में आया, फिर कलिंग से ताम्रलिप्त गया। वहां से वज्रासन और बोधिवृक्ष का दर्शन करता हुआ गया से होकर नालंद गया। इसने अपना नाम शीलप्रभ रक्खा था। फिर नालंद में दो एक वर्ष रहकर वह दक्षिण चला गया।

३१—तानकांग—यह चीन से अराकान आया पर आगे कहां गया पता नहीं।

३२—सुयेनता—यह बड़े उच्च वंश में उत्पन्न हुआ था। यह श्रीभोज आया और वहां छ महीने व्याकरण पढ़ता रहा। फिर अनेक तीर्थों में फिरता हुआ ताम्रलिप्त में पहुँचा। इसका कथन है कि ताम्रलिप्त नालंद से छ मंजिल पर है। वहां जाकर वह 'दीप' से मिला। उसके साथ वहां एक वर्ष रहकर संस्कृत पढ़ता रहा फिर वहां से बनजारों के साथ मध्यभारत में आरहा था। मार्ग में डाकुओं ने डाका मारा। इसमें सुयेनता को भी चोट आई। गाँव के किसानों ने दया करके उसकी सेवा शुश्रूषा की। चंगा होने पर वह नालंद गया और वहां दस वर्ष विद्याध्ययन करता रहा। नालंद से ताम्रलिप्त गया और वहां से चीन देश को लौट गया। यह अपने साथ अनेक पुस्तकें लेगया था।

३३—सेनहिग—श्रीभोज मे आया और वहां पर परलोक सिधारा।

३४—लिंगवान—यह चीन से आनाम होकर गया में आया था और महाबोधिवृक्ष के नीचे उसने बुद्धदेव और बोधिसत्व की मूर्तियाँ बनाई थीं।

३५—सेंगची—चीन से समतट मे आया। उस समय वहां राजभट्ट नामक एक बौद्ध राजा राज्य करता था।

३६—सि-जि—चीन से श्रीभोज में आया और वहा से भारतवर्ष में तीर्थों की यात्रा करता फिरा।

३७—ऊहिग—चीन से भारत आया और यहा से लका गया। लका में दर्शनादि करके भारतवर्ष आया और यहा महाबोधिविहार में कुछ दिन रहकर नालद गया। वहा योगाचार दर्शन के ग्रथों का अध्ययन करता रहा। इसने अपना नाम प्रज्ञदेव रखा था और नालद ही में यह परलोक सिधारा था।

इनके अतिरिक्त और कितने ही चीनी यात्री भारतवर्ष की ओर आए, कितनों का तो पता ही नहीं, कितने राह ही मे मर गए, कितने आधी राह से लौट गए। इन सब में अत्यत उल्लेख करने योग्य सुयेनच्वांग ही है। उसी का यात्राविवरण सब से बडा है। सुयेनच्वाग के अतिरिक्त फाहियान, सुगयुन और हुईसांग और ईसिग हैं। कालक्रम के विचार से सब से पहला फाहियान है, फिर सुगयुन और हुईसाग, तब सुयेनच्वाग और अत का ईसिग है।

फाहियान का यात्राविवरण तो आप लोगों के हाथें में पहुँच चुका है। उसके अनुवाद में मैंने जो श्रम और छानबीन की है उसका अनुभव आपको उस ग्रंथ के देखने से होगा। इन्हीं यात्रियों में से आज हम सुंगयुन और हुईसांग के यात्राविवरण का अनुवाद आपके सामने रखने का साहस करते हैं।

फाहियान ने अपनी यात्रा सीनवंश के राजत्वकाल में आरंभ की थी और उन्हीं के समय में सन् ४१५ ईस्वी में वह लौट गया। उसके पांच वर्ष के भीतर ही चीन पर तातारियों ने आक्रमण कर शीनवंश को तहस नहस कर दिया और लोयांग का प्रदेश, जिसमें तुनह्वांग आदि हैं, तातारियों के अधिकार में हो गया। फाहियान के यात्राविवरण के पाठकों को स्मरण होगा कि जब वह चांगयी: में आया था तो वहां अशांति थी। संभव है कि वह अशांति इन्हीं तातारियों के आक्रमण के कारण रही हो। जो कुछ हो, सन् ४२० में सीनवंश का तातारियों ने उच्छेद कर दिया और एक प्रबल तातारी साम्राज्य लोयांग में स्थापित हो गया। यह वंश वीई के नाम से प्रख्यात हुआ। इसी वीई वंश के साम्राज्यकाल में सुंगयुन और हुईसांग भारतवर्ष मे आए थे। जिस समय वे लोयांग से चले उस समय वहां एक विधवा रानी का राज्य था। उसके नाम का उल्लेख नहीं है। केवल इतना मात्र लिखा है कि 'वीई महावंश की विधवा महारानी ने अपना दूत बनाकर पश्चिम के जनपदों में बौद्धधर्म की पुस्तकों की खोज में भेजा'। यह सुंगयुन का लेख नहीं है

अपितु यह चीनी संग्रहकार की प्रस्तावना का वाक्य है जो उसने यात्रा को उपस्थित करते हुए ग्रंथ के आदि में लिखा है। यद्यपि इस यात्रा में विशेष कर सुगयुन की ही यात्रा का वर्णन है और उसीके हाथ के लिखे पत्रादि संग्रहकार को मिले थे तथा इसी कारण से यात्राविवरण सुगयुन के नाम से अंकित किया गया है पर फिर भी भिक्षु हुईसांग भी उसके साथ आया था। संग्रहकार ने स्वयं इस बात को ग्रंथ के उपसंहार में इन शब्दों में स्वीकार किया है कि 'यह विवरण विशेषत तावयुंग और सुगयुन के निज लेखों से लिया गया है। हुईसांग के लिखे विवरण कभी पूरे लिखे ही नहीं गए।' इससे जान पड़ता है कि हुईसांग ने अपनी यात्रा के संबंध में कुछ अधिक लिखा ही नहीं हो।

तावयुंग इनके साथ नहीं आया था अपि तु वह सुगयुन के पहले का जान पड़ता है पर वह था इसी वीई राज्य का। वह कौन था, यती वा गृही, इसका भी पता ठिकाना नहीं मिलता, पर सुगयुन गृहस्थ था। इसका घर तुनह्वांग में था पर 'वीई' साम्राज्य के किसी पद पर नियुक्त होने के कारण वह 'वेनई' वा लोयांग के पास ही किसी गाँव में रहता था। सुगयुन ने अपना राज्य का कर्मचारी होना गांधार के राजा के इस प्रश्न का कि 'मार्ग में आपको कष्ट तो नहीं हुआ ?' उत्तर देते समय इन शब्दों से ध्वनित कर दिया है कि 'हमारी महारानी ने हमें इतने दूर देशों में महायान की पुस्तकें खोजने को भेजा है। यह सच है कि राह में बड़ी कठिनाइयां हैं, तोभी 'थक गए' यह कहने का साहस

नहीं कर सकते'। इसका अनुवाद सीधे सादे शब्दों में यह है कि "हम महारानी के नौकर हैं जो चाहें आज्ञा दें, हमें वह करना ही पड़ेगा, दुख हो वा सुख, जीभ हिलाने का कैसे साहस हो सकता है।"

हुईसांग लोयांग के शुंगली मठ या विहार का एक भिक्षु था। इसे महारानी ने अपने कर्मचारी सुंगयुन के साथ धर्म-पुस्तकों की खोज में भेजा था। तातारियों और चीनियों में भाषा आदि बहुतसी बातों में समता थी। यह बात स्वयं यात्रा के अंत के इस वाक्य से कि "पश्चिमी विदेशियों की रीतियां बहुत कुछ समान हैं" प्रतिध्वनित होती है। जब पश्चिमी तातारियों की रीति नीति समान थीं तब पूर्वी तातारियों की भाषा चीनियों से मिलती जुलती अवश्य थी। ये लोग भी मंगोल थे और जैसे मंगोलों की भाषा एकाच (एकस्वरी) होती है वैसे ही इनकी भी भाषा थी।

ये दोनों यात्री साथ साथ वीई राज्य लोयांग से पहले खुतन की ओर गए। मार्ग में वे तुर्किस्तान त्सोमो:, मो: और हानमो होकर गए थे। खुतन से फिर वे उसी राह से होकर उद्यान तक आए जिससे प्रसिद्ध यात्री फाहियान आया था। सुंगयुन ने खुतन से उद्यान तक के देशों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। फाहियान और सुंगयुन की यात्रा में भेद इतना ही है कि फाहियान पामीर, फिर पूर्व कैकय देश और वहां से दरद गया और सुंगयुन पारद से

सीधे दरद को आया और उद्यान पहुँचा। दरद और उद्यान के मध्य सुगयुन को भी वही झूला पार करना पडा था जिसका उल्लेख फाहियान की यात्रा में मिलता है।

खुतन से उद्यान तक जिन देशों में से होकर सुगयुन आया उनके नाम ये हैं—(१) यारकद, (२) हानपानटो, (३) सुगलिग, (४) पो हो, (५) येथा (हूण), (६) पोस्से (पारद), (७) शियमी और (८) पोलूलाई (दरद)। इनमें हानपानटो तो सुगलिग वा पामीर के मध्य था। स्वय सुगयुन ने लिखा है कि सुगलिग पर्वत की चोटी तक हानपानटो की सीमा है। उसे इस राज्य में एक वर्फ का मिथ्या पर्वत मिला था जिसे सुगयुन ने 'यूहोई' लिखा है। ऐसे मिथ्या पर्वत उन यात्रियों को भी मिले थे जो पामीर से होकर गोबी वा खुतन् गए थे। हम यहा उन लोगो की बातें दुहरा कर भूमिका को एक पृथक् ग्रथ बनाना नहीं चाहते। इम्पीरियल गजटियर और इडियन एटीक्वेरी में इसका सविस्तर वर्णन है।

सुगयुन ने येथा या हूणों का अच्छा वर्णन किया है। इन लोगों के रहन सहन का भी उसने बहुत स्पष्ट चित्र खींचा है। उस समय इनका अभ्युदय हो रहा था। सारे मध्य एशिया में इनका प्रभाव बढ गया था। इन हूणो ने भारतवर्ष पर भी आक्रमण करने में कोई बात उठा न रखी थी।

ये लोग पुष्यमित्र के समय में सब से पहले भारतवर्ष में मध्य एशिया से आने लगे थे, पर उस समय स्कदगुप्त ने यहाँ

पर बैठ कर उन्हें मार कर भगा दिया था। यह हूणों का आक्रमण सन् ४५५ के पूर्व हुआ था, क्योंकि स्कंदगुप्त ने उन्हें अपने सिंहासनारूढ़ होते ही मार भगाया था। सन ४६५–७० तक हूण लोग फिर आक्रमण करने लगे थे और स्कंदगुप्त के राज्य में घुस आए थे। उनके प्रवाह को स्कंदगुप्त न रोक सका। मि० स्मिथ लिखते हैं—

He (Skandagupta) was unable to continue the successful resistance which he had offered in the earlier days of his rule, and was forced at last to succumb to the repeated attacks of the foreigners, who were, no doubt, constantly recruited by fresh hordes eager for the plunder of India.*

भावार्थ यह है कि यद्यपि स्कंदगुप्त ने पहले उन्हें रोका था पर फिर जब वे विदेशी बराबर लगातार सेना लेकर झुंड के झुंड आने लगे तो वह उन्हें रोक न सका और कुछ न कर सका। वे भारतवर्ष को लूटने के लिये मध्य एशिया से आते रहे।

हूणों का धावा भारतवर्ष ही पर नहीं हुआ। ये लोग मंगोल थे और जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गई तो वे पश्चिम की ओर अन्य देशों में लूट मार करने के लिये निकले और दो

---

* विन्सेंट स्मिथ, 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया,' तीसरा संस्करण, पृष्ठ ३१०।

ओर गए—एक ने तो आक्सस के दून की ओर दूसरों ने वालगा की राह ली। पहले झुड के लोगों ने तो आक्सस की घाटी पर अधिकार कर लिया और वे श्वेत हूण के नाम से प्रख्यात हुए। दूसरे झुड के लोग ३७५ ई० में यूरोप में घुसे और उन्होने गाथ लोगो को डेनूब नदी के दक्षिण मार भगाया, तथा आप वालगा और डेनूब के किनारे फैल गए। फिर अत्तीला के सेनापतित्व में इन लोगों ने रवेना और कुस्तुतुनिया पर आक्रमण किया था।

एशिया में हूणो की शक्ति बढती गई और उन लोगो ने सन् ४८४ ई० में फारस के राजा फीरोज के मारे जाने पर काबुल की ओर पैर बढाया और वे कुशन साम्राज्य का ध्वस कर हिंदुस्तान में बढने लगे। पहले तो स्कदगुप्त ने उन्हें मार भगाया पर जब ढेर के ढेर लोग आते रहे तो उससे न रोका गया और गाधार पर उनका अधिकार हो गया। उन्हीं का एक सर्दार जिसका नाम तोरमान था दक्षिण में मालवा तक गया और वहां तक उसने अपना अधिकार कर लिया। उसीका बेटा मिहरगुल उसके मर जाने पर सन् ५१० में गांधार में साकल का राजा हुआ। सभवत गाधार मे इसी मिहरगुल से सुगयुन की भेंट हुई थी।

पर मि०स्मिथ की यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि सुगयुन से हूण के राजा से वामियान वा हिरात में कहां सन् ५१९ई०में भेंट हुई इसका निश्चय नहीं किया जा सकता, पर

वह चालीस राज्यों से कर लेता था* । सुंगयुन ने उस देश का नाम हूण लिखा है । उसे उसने स्मिथ के समान सेना का पड़ाव (Headquarters of the hordes) नहीं लिखा । तब यह स्पष्ट ही है कि वह पड़ाव (Headquarters of the hordes) पर नहीं गया था । उस देश का वर्णन जो सुंगयुन ने किया है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे इस देश के रहनेवाले थे । इसमें संदेह नहीं कि सुंगयुन आक्सस के दून में अवश्य गया जहां हूण लोग आकर बसे थे । हिरात देश आर्य्यों की बस्ती थी । चाहे वे भारतीय आर्य्य हों वा पारसीक, उनका नगर बिना प्राचीर के कैसे हो सकता था ।

जिस समय सुंगयुन गांधार आया था उस समय गांधार का हूण राजा संभवतः मिहरगुल केपिन देश से लड़ रहा था । विंसेंट स्मिथ केपिन से काश्मीर लेते हैं और वे चवेन्नेस के आधार पर लिखते हैं कि सुंगयुन के समय में केपिन काश्मीर का बोधक था । सातवीं शताब्दी में केपिन कपिसा या उत्तर-पूर्व अफगानिस्तान का बोधक था† । कपिसा काबुल के पूर्व में है, चाहे वह उस समय काश्मीर में रहा हो (जो समझ में नहीं आता), पर केपिन से काबुल ही का बोध जान पड़ता है । केपिन काबुल नदी के प्रदेश का नाम जान पड़ता है । वैदिक भाषा में

*विन्सेंट स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, तीसरा संस्करण, पृष्ठ २१७ ।

† विन्सेंट स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, तीसरा संस्करण, पृष्ठ ३१७, नोट २ ।

काबुल नदी का नाम कुभा है। इसी कुभा से केपिन काबुल आदि अपभ्रष्ट रूप बने हैं। संभव है कि उस समय काबुल की राजधानी कपिसा रही हो, पर केपिन काश्मीर का बोधक है यह समझ में नहीं आता।

उद्यान से सुगयुन मोहिउ गया और वहां से शेनशी या चक्रगिरि गया और तब गाधार पहुँचा। फाहियान ने अपने यात्राविवरण में इन दोनों स्थानों का वर्णन नहीं किया है सभवत वह वहा न पहुँच सका हो।

गाधार मे मिहरगुल से भेंट कर वह तक्षशिला गया। यहा या तो सुगयुन को दिशा भूल गई वा वह लेखप्रमाद से पूर्व के स्थान पर पश्चिम लिख गया है। तक्षशिला गाधार से पूर्व है, पश्चिम नहीं। जान पडता है कि चेवन्नीस को यही देख कर यह भ्रम हुआ और उसने यह लिख दिया कि केपिन काश्मीर का बोधक था। जो कुछ हो, तक्षशिला से वह फिर पुष्कलावती होता हुआ गांधार की राजधानी में आया। इससे भी यही ठीक जान पडता है कि वह गाधार से होकर तक्षशिला गया था। पर यह स्मरण रखने की बात है कि वह गाधार की राजधानी में नहीं आया था। वह गाधार के देश मे होकर निकला और जब उसे पता चला कि गाधार का राजा तक्षशिला के पूर्व में शिविर में पडा लड रहा है तो वह सीधे शिविर में गया और वहां से होकर तक्षशिला तथा पुरुषपुर के देशों में होता हुआ पेशावर में, जो गाधार की पुरानी राजधानी था, आया।

मि० स्मिथ का कथन है कि उस समय मिहरगुल काश्मीर के राजा से युद्ध कर रहा था और तीन वर्ष तक लड़ता रहा* । इसी आधार पर स्मिथ ने कॅपिन को काश्मीर लिखा है। कनिष्क के राज्य का विस्तार काश्मीर तक था। इस बात को काश्मीर के इतिहास लेखक राजतरंगिणीकार तक ने माना है। जान पड़ता है कि सुंगयुन ने उस सारे देश के लिये जो कनिष्क के अधिकार में था कॅपिन शब्द का व्यवहार किया है। काबुल राज्य के दो भाग थे एक पश्चिमी और दूसरा पूर्वीय। इनमें से पश्चिमी को चीनियों ने 'काव फू', और पूर्वी को 'कॅपिन' लिखा है।

जनपदों की सीमा का यथाकाल परिवर्तन होता रहा है। इसी कारण लोगों को ऐसी कल्पना करने की आवश्यकता पड़ी है कि 'कॅपिन' काश्मीर के लिये आया है। वास्तव में कॅपिन पूर्वी काबुल के देशों के लिये आया है जिसकी राजधानी कपिसा रही होगी।

गांधार की राजधानी में जाने पर उसने वहां कनिष्क के स्तूप को देखा। वह नगर से दक्षिण ७ ली पर था। इस स्तूप का उल्लेख फाहियान और सुयेनच्वांग दोनों ने किया है। कनिष्क का स्तूप वृहत् और महान था। उसमें बहुत काल तक विद्यालय भी था। दसवीं शताब्दी तक उसका पता चलता

---

* विन्सेंट स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, तीसरा संस्करण, पृष्ठ २१७.

है। उसके चिह्न पेशावर के लाहोरी दर्वाजे के बाहर शाह जी की ढेरी में अब तक मिलते हैं। यह लकड़ी का बना था और तीन बार जल चुका था। अत को महमूद गजनवी ने उसका नाम सदा के लिये ससार से मिटा दिया।

इस यात्राविवरण में वेस्सतर जातक के लीलास्थलों का जो उद्यान जनपद के आस पास थे सविस्तर वर्णन है। यहा फाहियान न तो गया ही था और न उसने उनका कुछ वर्णन ही किया है। सीमाप्रात के देशों के प्रधान स्थानो का वर्णन जैसा सुगयुन ने किया है वैसा और किसी ने कम किया है। यही प्रधान कारण है कि इतना छोटे होने पर भी यह ग्रथ बडे महत्त्व का है।

सुगयुन को वीई से उद्यान तक आने और पुस्तकों की खोज कर वहां से लौटने में चार वर्ष से पांच वर्ष लगे (सन् ५१८-५२१), पर वह किस मार्ग से लौटा इसका वर्णन नहीं मिलता है। यह ग्रथ किसी चीनी सज्जन का लिखा हुआ जान पडता है, जिसने सुगयुन की रिपोर्ट से जो उसने वीई महारानी को दी थी इसका सग्रह किया था। बाच बीच में वह टिप्पणी भी कहीं कहीं देता गया था, जिसमें एक और यात्री तावयुग की यात्रा का भी उल्लेख है। यह बात उसके उपसहार के इन वाक्यों से स्पष्ट प्रमाणित होती है कि 'यह विवरण विशेषत तावयुग और सुगयुन के निज के लेखों से लिया गया'। किमधिकम्।

बील की प्रस्तावना

— ० —

यह यात्री तुनह्वाग का अधिवासी था, जो उस देश मे है जिसे छोटा तिब्बत कहते हैं (३६° ३०′उ० ९५°पू०)। जान पडता है कि वह लोयाग (होनानफू) नगर के किनारे जिसे उस समय 'वान-श्राई' कहते थे रहता था। उसे सन् ५१८ ई० में उत्तरीय 'वोई' वश की महारानी ने 'लोयाग' के 'शुगली' विहार के भिक्षु 'हुईसांग' के साथ पुस्तको की खोज के लिये पश्चिमीय देशों में भेजा था। वे १७५ पुस्तकें वा महायान के ग्रथो को ले गए थे। जान पडता है कि वे दक्षिण के मार्ग से 'तुनह्वाग' से खुतन आए और वहा से सुगलिग पर्वत पार कर उसी मार्ग से आए जिससे फाहियान और उसके साथी आए थे। 'येथा' (Ephthalite) लोगो का उस समय 'यूची' के प्राचीन देश पर अधिकार था और बहुत दिन नहीं बीते थे कि उन लोगों ने गाधार का विजय किया था। उनके विषय में वे लिखते हैं कि उनके नगरो में प्राचीर नहीं थे और स्थायी सेना से, जो इधर उधर फिरा करती थी, वे शाति-रक्षा करते थे। वे नमदे (वा चमडे) का वस्त्र पहिनते थे, न उनकी कोई लिपि थी और न उन्हें ग्रह नक्षत्रादि का ज्ञान था। सब प्रकार से यह स्पष्ट है कि येथा तुर्कों का एक असभ्य गण था जो 'हियुगनू' के पीछे पीछे आया, वस्तुत वे लोग बाइजेंटाइन

लेखकों के 'इफ्थली' वा 'हूण' थे। 'छठी शताब्दी के आरंभ में उनकी शक्ति पश्चिमी भारत में छा गई, और कोसमस उनके राजा 'गोल्लस' के संबंध में कहता है कि उसके साथ एक हजार हाथी और विशाल अश्वारोही सेना थी' *। सुगयुन ने भी उस राजा का नाम लिया है जिसे येथा ने गांधार की राजगद्दी पर बैठाया था। वह लइलि: वंश या लइलि: जाति का था जो संभवत: लार ही का पाठांतर हो सकता है। सुयेनच्वांग † के अनुसार उत्तरीय लार वल्लभी और दक्षिणी लार मालवा के थे। इन्हीं लार के किसी राजकुमार को येथा ने गांधार की गद्दी दी थी। हो सकता है कि कोसमस के गोल्लस के साथ ही चीनी यात्रियों की भेंट हुई थी। कुछ हो वह सात सौ लड़ाई के हाथी साथ लिए लोगों पर शासन करता था और स्पष्ट एक भयानक और अत्याचारी अधिपति था।

सुगयुन के अनुसार येथा ने चालीस से अधिक सब देशों का,—दक्षिण में तिएलो से उत्तर में लइलि: तक और पूर्व में खुतन से पश्चिम में फारस तक—विजय कर लिया था वा वह उनसे कर लेता था। तिएलो का चिह्न संभवत: तीरभुक्ति का द्योतक है जो आधुनिक तिर्हुत (वृज्जी का प्राचीन देश) है। अधिक संभव जान पड़ता है कि वृज्जी लोग स्वयं सीथियन् (Scythian)

---

* यूल, 'उड का आइस २७'।

† सुयेनच्वांग, खंड ११।

आक्रामक थे, जिनका अधिकार गंगा के किनारे पटना तक पहुँच गया था पर अजातशत्रु ने उनका अवरोध किया था। वे लोग पीछे उत्तर पूर्व * नेपाल के किनारे के पर्वत तक हटाए गए। येथा ने भी अपना अधिकार इस (तिर्हुत) तक फैलाया था और उत्तर में † मालवा तक। यह विजय सुगयुन के काल से दो पीढी पहले हुई थी, इसलिये हम भारत ‡ के इस आक्रमण को इस हेतु ४६० ई० के लगभग मान सकते हैं।

सुगयुन का उद्यान जनपद का वर्णन सुयेनच्वांग के वर्णन से टक्कर खाता है, उसमें विस्तार अधिक है और कथोपयोगी बातें भरी हैं। यह विचित्र बात है कि वेस्सतर, वा सुयेच्वांग के सुदान, और सुगयुन के पेलो के जातक का घटनास्थल इसी दूर के प्रदेश को बताया जा सकता है। वेस्सतर जातक§ फाहियान के काल में लंका में विख्यात था। यह कथा अमरावती और सांची के उन दृश्यों में भी है जो वहां पत्थरों पर खुदे मिलते हैं, मगोलो में यह कथा लोकप्रसिद्ध कथाओं में से है। इस कथा के घटनास्थल उद्यान में कैसे माने गए? मौर्य वा मोरिय राजाओं

* सेंट मार्टिन का वृत्तांत, पृष्ठ ३६८।

† बील को यह ज्ञात नहीं कि मालवा तिर्हुत से उत्तर नहीं है।

‡ यह बील का निज अनुमान है किसी ऐतिहासिक ने नहीं माना है।

§ देखो फाहियान पत्र ३८ और परिशिष्ट।

के उस शाक्य कुमार के वंशधर होने के संबंध में, जो उस प्रांत में भाग कर गया, कुछ अनिश्चित बातें हैं जिससे इस पर कुछ प्रकाश पड़ता है। बौद्धों का यह निश्चय है कि अशोक उसी वंश का था जिस वंश के बुद्धदेव थे। कारण यह है कि वह चंद्रगुप्त के वंश में था जो मोरिय नगर के किसी राजा की रानी की संतान था। इस मोरिय नगर को उसी शाक्यकुमार ने बसाया था जो कपिलवस्तु से उद्यान भाग कर गया था। अतः शाक्य के संबंध में जो कुछ प्राचीन कथाएं थीं सब का संबंध उद्यान के साथ, चाहे अशोक के गुप्त वा प्रगट प्रभाव के कारण हो वा उसके बौद्ध सम्राट के रूप में ख्यात होने के कारण, जोड़ दिया गया हो। पर उद्यान के इतिहास का शाक्यवंश से किसी रूप में संबंध है और बुद्धदेव से भी उत्तरसेन को अपना गोत्रज स्वीकार कराया गया है *। फिर तो हम मान सकते हैं कि ये कथाएं उद्यान के लोकप्रचरित वा वंश आख्यानों से चल पड़ीं और वहां से दूसरे देशों की कथाओं में पहुँचीं। इसी लिये जहां हमें दक्षिण के जातक में हाथी का उल्लेख मिलता है जो स्वर्ग से पानी लाता था और जिसके कारण वेस्संतर निकाला गया था, वहां हमें उत्तर के वर्णनों में मयूरों† का

---

* दे० सुयेनच्वांग, खंड २।

† सुयेनच्वांग तीसरे खंड में शाननी-लोरी दून के संबंध में लिखा है कि 'तथागत के समय में यहां मयूरराज रहता था'। एक समय वह यहां अपने साथियों के साथ आया, बड़ी प्यास से पीड़ित हो चारों ओर

उल्लेख मिलता है जो चट्टान से पानी लाता था। दोनों स्पष्ट एक ही जान पड़ते हैं। पर इस विषय को यहा अधिक बढाने की आवश्यकता नहीं है, इतना ही कहना बहुत है कि उत्तर की कथाओं की बहुत सी कहानियों में किसी न किसी रूप में उद्यान के सुदर प्रदेश के ही स्थान आते हैं। सुगयुन पेशावर और नगरहार पहुँच कर सन् ५२१ में चीन को लौटा।

पानी ढूढने लगे पर कुछ न हुआ। मयूरराज ने अपनी चोंच से चट्टान पर मारा और इस पर अनेक धाराएँ निकलीं। यहा अब कुड बन गया है। रोगी इसमें नहाकर वा इसका पानी पीकर चगे हो जाते हैं। चट्टान पर अब तक मोर के पैर के चिह्न देख पड़ते हैं।

सुंगयुन का यात्रा-विवरण।

वेनई* के पास, लोयांग† नगर के उत्तर-पूर्व तुनह्वाग‡ वासी सुगयुन का घर था। इसी को भिक्षु हुईसाग के साथ महावीई§ वश की विधवा महारानी ने अपना दूत बनाकर पश्चिम के जनपदों में बौद्ध धर्म की पुस्तकों की खोज के लिये भेजा। यह शेनकेई †† संवत् के पहले वर्ष के ग्यारहवें महीने की बात है। महायान की १७० पुस्तकें उनको मिली थीं।

१-प्रस्तावना

सब से पहिले वे राजधानी को गए। वे पश्चिम दिशा में ४० दिन चले, ची लिग§§ पहुँचे, यह उस देश की पश्चिम सीमा पर है। इस पहाड़ी पर वीई के जनपद

२—ची लिग

---

* यह लोयांग नगर के पास है।

† इसे अब हीनानफू कहते हैं। यह होनान की राजधानी था।

‡ यह नगर वुलुंघेर नदी के किनारे है। फाहियान इस नगर से होकर आया था। दे० पर्व १।

§ सीन राजवंश के पतनानन्तर ४२० ईस्वी में चीन के उत्तरीय प्रदेशों पर एक तातारी जत्थे का अधिकार हो गया था। ये लोग 'वीई' कहलाते थे। दक्षिण प्रदेशों में दक्षिणीय सुंगवंश का अधिकार था।

†† यह संवत् सन् ५१७—१८ ई० में आरंभ हुआ था।

§§ 'ची लिग' शब्द का अर्थ है वन्ध्या पहाड़ी—वृक्षादि न उपजने के कारण ही इसका ऐसा नाम है।

की प्राकारवेष्टित चुंगी है। चीःलिंग पर कोई वृक्ष वनस्पति नहीं उपजती इसी कारण उसका यह नाम पड़ा है। यहां 'मूषक पक्षी'* नाका है। दोनों जंतु भिन्न वंश, पर एक जाति के हैं—नरपक्षी और मूसनी ने जोड़ खाया और बच्चा दिया। इस प्रकार उनके जोड़ के कारण इसका नाम मूषकपक्षी नाका पड़ा।

चीःलिंग उतर कर २३ दिन पश्चिम ओर चले। मरु भूमि † पार कर तुर्किस्तान (तुःक्यूहुन) जनपद में पहुँचे। मार्ग में बड़ी कठिन ठंढ पड़ी, इतनी आँधी चली, तुषार पड़ा, बालू कंकड़ उड़ उड़ कर पड़े कि आँख खोलना कठिन था। तुर्किस्तान की राजधानी और उसके आसपास के प्रदेश सुखप्रद और गरम हैं, वहां वालों और वीई देशवालों की लिपि ‡ लगभग एक सी है। इनके आचार व्यवहार अधिकतः असभ्य हैं।

३-तुर्किस्तान

वहां से ३५०० ली पश्चिम ओर चलकर शेनशेन§ की राजधानी

---

* यह उस नाके का नाम है। इसका कारण आगे दिया है।

† गोबी की मरुभूमि।

‡ कारण यह है कि वीई के लोग भी तातारी थे।

§ बील का मत है कि यह लेउलान है जिसे मार्कों पोलो ने चर्चन (खर्सन) लिखा है। मेयर ने इसे पिजान बतलाया है। लेगी का मत है कि यह स्थान लाब हृद के पास दक्षिण दिशा में था। इनसाइक्लोपीडिया में इसे तुर्किस्तान की 'एक छोटी रियासत बताया है और लिखा है कि यह आधुनिक पिजान (Pidjan) के पास था।

४-शेनशेन

में पहुँचे। इस नगर को राजतंत्र स्थापन होने पर तुर्किस्तान ने विजय कर लिया। अब वहां एक सैनिक रहता है। वही पश्चिम का शासन करता है। छावनी में ३००० सैनिक रहते हैं। ये सदा पश्चिम की 'हू'* जाति को दमन करने के लिये कटिबद्ध रहते हैं।

५-स्तोमो

शेनशेन से पश्चिम ओर १६४० ली चल कर 'स्तोमो' † नगर में पहुँचे। इस गाँव में सम्भवत १०० घर की बस्ती है। जनपद में वृष्टि नहीं होती। लोग नदियों के पानी से खेती सींचते हैं। जोतने के लिये हल-बैल से काम लेना नहीं जानते।

इस गाँव में बुद्धदेव की एक मूर्ति है—साथ में एक बोधिसत्व है—उनका मुँह तातारियों सा नहीं है। एक बूढ़े से पूछा तो उसने कहा कि यह मूर्ति 'लूकांग' की बनवाई है। उसने तातार का विजय किया था।

इस नगर से १२७५ ली पश्चिम चलकर 'मो' ‡ नगर में

---

* चीनी के कुछ लेखकों का मत है कि भिन्न भाषा-भाषियों को जो संभवत तातारी थे 'हू' कहते हैं। सुयेनच्वांग ने अपनी यात्रा के प्रथम खंड में समरकंद को 'हू' जाति के मध्य का देश लिखा है। संभव है कि ये लोग 'हूण' ही रहे हों।

† बीठ साहिब लिखते हैं कि संभवत यह वही नगर है जिसे सुयेनच्वांग ने 'नीमो' लिखा है। वह सुरघाक (सर्गक) के पास था।

‡ इस स्थान का पता नहीं चला है।

पहुँचे। यहां के फूल फल लोयांग के समान होते हैं। पर लोगों के घरों की और विदेशी कर्मचारियों की आकृति भिन्न प्रकार की है।

६—मोः

मोः नगर से पश्चिम २२ ली चलकर 'हानमोः'* नगर में पहुँचे। इस नगर से १५ ली दक्षिण एक बड़ा मंदिर है—३०० श्रमण उसमें रहते हैं। श्रमणों के अधिकार में १$\frac{3}{6}$ चांग (१८ फुट) लंबी बुद्धदेव की एक सुनहली मूर्ति है। देखने में बहुत शुभ्र है, सब लक्षण शरीर पर स्पष्ट और स्वच्छ हैं। इसका मुंह कई बार पूर्व की ओर किया गया पर मूर्ति सहती नहीं और पश्चिम मुँह हो गई। बूढ़े इसके विषय में यह जनश्रुति कहते हैं कि 'यह मूर्ति आकाश मार्ग से दक्षिण की ओर से आई। खुतन के राजा ने इसे आप देखा, इसकी पूजा की और अपनी राजधानी में इसे उठा ले जाना चाहा। पर मार्ग में जब लोग ठहरे तो मूर्ति वहां से लोप हो गई। ढूँढ़ने के लिये लोगों को भेजा। उन लोगों ने आकर देखा तो वह अपने पुराने स्थान पर आगई थी। अतः उसी क्षण मंदिर बनवाया

७—हानमोः

* यह स्थान बील के मत से सुयेनच्वांग का 'पीमो' है जिसका उल्लेख उसने अपने यात्रा-विवरण के बारहवें खंड में किया है। वहां एक मूर्ति का भी उल्लेख है जिसे बुद्धदेव के जीवनकाल में कौशांबी के राजा उदयन ने बनवाया था। वह मूर्ति बुद्धदेव के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर 'होलोकिया' (राधा, रावन वा ओरवा) में आकाशमार्ग से आई थी।

और सेचन और मार्जन के लिये ४०० परिचारक नियत किए। यदि किसी परिचारक को किसी प्रकार की चोट लगती है तो मूर्ति के उसी अंग पर सोने का पत्र लगाते हैं और घाव चंगा हो जाता है।' पीछे लोगों ने उस अठारह फुट की मूर्ति के आस पास मंदिरों और देवालयों को बनवाया। सब के ऊपर सहस्रों नाना वर्ण की रेशमी पताकाएं लगी हैं। संख्या में लगभग १०००० होगी। आधी से अधिक वीई* देश की (पताकाएं) हैं—उन पर चढ़ाने के काल चौकोन अक्षर में कढ़े हैं। सब से अधिक 'ताइ-हो'† के काल के उन्नीसवें वर्ष की, मिंग राजा‡ के दूसरे वर्ष की, येनचाग§ के दूसरे वर्ष की चढ़ी हुई हैं। इनमें केवल एक ऐसी पताका थी जिस पर (चढ़ानेवाले) राजा का

---

* ये पताकाएँ वीई वंश के राजाओं की चढ़ाई हुई रही होंगी अथवा उनके राजत्वकाल में वहां की प्रजा की ओर से चढ़ाई गई होंगी।

† ताइ-हो का काल ४७७ ई० से ५०० ई० तक था। बील साहिब का कथन है कि उस काल में उन्नीसवां वर्ष होगा ही नहीं ' There could be no nineteenth year of this period उनका मत है कि या तो मूल में कुछ अशुद्धि है अथवा लाव वेनती के राजत्वकाल का उन्नीसवां वर्ष था जो सन् ४९० ई० में पड़ता है। ताइ हो के काल के सामने के दिए हुए ईस्वी सन् के अंक में यदि भूल नहीं है तब तो २३ वर्ष का ताइ-हो का शासनकाल ठहरता है। इस काल का उन्नीसवां वर्ष ४९५ ई० में पड़ता है।

‡ यह सन् ५०१ ई० में सिंहासन पर बैठा।

§ यह सन् ५१० ई० में राजा हुआ था।

नाम अंकित था और यह पताका 'याउसिन'* के समय की थी।

'हानमो' नगर से पश्चिम ८७८ ली चलकर खुतन जनपद में पहुँचे। इस देश का राजा सिर पर मुकुट धारण करता है। (मुकुट) आकार में कुक्कुट की शिखा के समान है, पीछे दो दो फुट के झब्बे लटका करते हैं, ये पाँच इंच चौड़े ताफते के होते हैं। राजकीय अवसरों पर गौरव-प्रदर्शनार्थ डंके, सिंघे, सुनहली झांझ बजती हैं। राजा के साथ एक प्रधान धनुर्धर, दो वर्छीवाले, पांच शक्तिधर, और दायें वायें सौ सौ के लगभग तलवार वाँधे सेना रहती है। निर्धन स्त्रियां पायजामा पहिनती और पुरुषों की भांति घोड़े पर चढ़ती हैं। लोग अपने मुर्दे जलाते और अस्थिसंचय कर उस पर चैत्य बनाते हैं।

८—खुतन

अशौच के समय सिर मुँड़ाते और रोना मुँह बनाते हैं। सिर के वाल चारों ओर से चार चार इंच मुँड़ाते हैं†। राजा के शव को मरने पर जलाते नहीं। उसे मंजूषा में बंद करके मरुभूमि में ले जाकर गाड़ देते हैं। वहां स्मरणार्थ छतरी बनाते हैं और यथाकाल तर्पणादि करते हैं।

खुतन का पहला राजा वौद्ध धर्मावलंबी नहीं था। एक

---

* इसका शासनकाल सन् ४०६ ई० से आरंभ हुआ था।

† इससे पता चलता है कि खुतन के लोग भारतवर्षवालों के समान शिखा रखते थे। उनके शौचादि के आचार भी यहीं के से थे।

समय एक विदेशी बनिया एक भिक्षु को, जिसका नाम वैरोचन था, यहाँ लेकर आया। उसने उसे नगर के दक्षिण नदी के तट पर बेर के एक वृक्ष के नीचे बैठा दिया। इस पर एक चर ने राजा के पास जाकर सूचना दी कि महाराज की आज्ञा बिना कहीं का एक भिक्षु आया है और नगर के दक्षिण बेर के वृक्ष के तले आसन लगाए बैठा है। राजा को यह सुन क्रोध हुआ और वह तुरत वैरोचन के पास आया। भिक्षु तब राजा से बोला कि तथागत ने मुझे आदेश दिया है कि वहां जाओ और राजा से कहो कि 'एक सर्वांगपूर्ण स्तूप भगवान के निमित्त बनवा दे इससे तेरा सदा कल्याण होगा।' राजा ने कहा मुझे पहले बुद्धदेव का दर्शन कराइए फिर मैं उनकी आज्ञा का पालन करूँगा। इस पर वैरोचन ने मंत्रोच्चारण* किया, बुद्धदेव ने तुरत राहुल को आज्ञा दी कि तुम मेरा रूप धारण कर आकाश मार्ग में प्रगट होओ। राजा† ने साष्टांग प्रणिपात किया और उसी क्षण

---

* महाशय समद्दार ने भ्रमवश इसका अनुवाद "वैरोचन तखन एकटी घटाध्वनि करिलेन" किया है। बील ने sounded a gong लिखकर नोट में लिखा है कि The expression in the original implies the use of some magical influence to constrain Buddha to send Rahula' अर्थात् मूल का भाव यह है कि बुद्धदेव को राहुल को भेजने के लिये प्रेरित करने के निमित्त कुछ तांत्रिक प्रयोग किया।

† खुतन राज्य के स्थापित होने के १६५ वर्ष पीछे 'विजयसंभव' वहां का राजा हुआ। इसीके काल में खुतन में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ था। कहते हैं कि विजयसंभव के राज्यकाल के पांचवें वर्ष यहां

उस वृत्त के नीचे एक स्तूप और विहार बनाने का प्रबंध किया। फिर राहुल की एक प्रतिमा बनवाई और यह विचार कर कि कहीं दैवात् नष्ट न हो जाय उसकी रत्ता के लिये पीछे एक मंदिर बनवा दिया। यह मूर्ति अब तक संपुट में बंद रहती है पर इतने पर भी मूर्ति की आभा मंदिर के बाहर देखाई पड़ती है। जो मनुष्य उसे देखते हैं बिना मंदिर की परिक्रमा किए नहीं रहते। इस जगह प्रत्येक बुद्धों की पादुकाएँ हैं। ये पादुकाएँ अब तक ज्यों की त्यों हैं। पादुकाएँ चमड़े वा रेशम की नहीं हैं। सचमुच इसका पता चलना कठिन है कि वे किस चीज़ की बनी हैं। खुतन जनपद का विस्तार पूर्व से पश्चिम तक लगभग ३००० ली है।

९—यारकंद

'शनकई' के दूसरे वर्ष के सातवें मास की २९ वीं तिथि के दिन चूकूपो (यरकियंग) जनपद में पहुँचे। यहां के लोग पहाड़ी हैं। पाँचों प्रकार के अन्न बहुत अधिक होते हैं। खाने के लिये वे इनकी लिट्टी† बनाते हैं। वे लोग जीवहिंसा करना अच्छा नहीं समझते। जो लोग खाते हैं वे उन्हींका मांस खाते हैं जो आप मर जाते हैं। इनके आचार

बौद्धधर्म का उपदेश आरंभ हुआ। विजयसंभव के पिता का नाम जावाल (Yeula) था।

† जान पड़ता है कि यहांवालों को रोटी खाते देख कर यात्री को आश्चर्य्य हुआ था।

व्यवहार और बोली खुतनवालों की नाई हैं। पर इनकी लिपि ब्राह्मी है। यह देश पाँच दिन में पार किया जा सकता है।

आठवें महीने के प्रथम 'दशक'* में 'हानपानटो'† जनपद की सीमा में पहुँचे। पश्चिम और छ दिन चल कर 'सुगलिंग'‡ पर्वत पर चढ़े। तीन दिन और पश्चिम चलने पर 'क्यूये यू'†† नगर, और पुन तीन दिन और जाने पर 'पू होई'‡‡ पर्वत मिला। यह स्थान अत्यंत ठंढा है। जाड़े गर्मी में बर्फ पड़ती रहती है। पर्वत के ऊपर एक झील है उसमें एक दुष्ट नाग रहता था। प्राचीन काल में एक बनिया आकर इस झील के किनारे रात को ठहरा। नाग उस समय बिगड़ा

१०—हानपानटो

---

* चीनी महीने में तीन दशक होते हैं। आदिदशक, मध्यदशक और अंतदशक।

† 'कबध' देश। बील का मत है, कि यह वही जनपद है जिसे सुयेनच्वांग ने १२ खंड में कीपानटो लिखा है। जूलियन ही ने कीपानटो को कवेध वा कबध लिखा है। यूल का मत है कि कवेध 'सरेकुल' और ताशकुर्गन' है।

‡ पर्वतों की वह शृंखला जो पूर्व से पश्चिम तक भारतवर्ष के उत्तर मध्य एशिया खंड में चली गई है। दे० फाहियान।

†† बील का मत है कि यह वही नगर है जिसे सुयेनच्वांग ने पहले खंड में कीगयू लिखा है।

‡‡ इस शब्द का अर्थ है 'मिथ्या पर्वत'। जान पड़ता है कि यह वास्तव में पर्वत नहीं था अपितु 'हिमपुंज' था। अथवा हिम से इतना आच्छन्न था कि भूमि देखाई न पड़ती रही होगी।

था। उसे उसने मंत्र पढ़ कर मार डाला। जब 'पानटो'* के राजा ने यह सुना तो अपने पुत्र को युवराज बना वह उद्यान जनपद में ब्राह्मणों से मंत्रशास्त्र सीखने गया। चार वर्ष पीछे वह ब्राह्मणों से (मंत्रशास्त्र के) सब रहस्य जान कर अपनी राजगद्दी पर आया। झील के किनारे बैठ कर नाग पर अपने मंत्र का प्रयोग करने लगा। देखो! नाग मनुष्य बन गया और अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करके राजा के पास आया। राजा ने उसी क्षण उसे सुंगलिंग पर्वत से निकाल झील से १००० ली दूर भेज दिया। वर्तमान राजा उस राजा की तेरहवीं पीढ़ी में है।

इस स्थान से पश्चिम ओर का मार्ग निरंतर चढ़ाव का और ऊबड़ खाबड़ है। लगभग १००० ली तक राह में बड़े बड़े ऊँचे कगार हैं, १०००० कदम ऊँचे और आकाश से बातें करते हैं, मांगमेन के दर्रे इस मार्ग की विषमता के आगे कुछ भी नहीं है, और सुविख्यात ह्यिनसांग की ऊँचाई इसके सामने समतल भूमि के समान है। सुंगलिंग पर्वत में पहुँच कर पद पद करके चार दिन चढ़ते रहे फिर सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचे। वहां से खड़े होकर नीचे ताकने पर जान पड़ता था कि मानों आकाश में टँगे हैं। हानपानटो देश की सीमा इस पर्वत की चोटी तक है। लोग कहते हैं कि यह स्थान स्वर्ग और पृथ्वी के बीचोबीच है। यहांवाले अपने खेतों को नदियों

११ सुंगलिंग

* संभवतः 'हानपानटो'।

के पानी से भरते हैं। जब इन लोगों से यह कहा कि मध्य देश* मे खेत वर्षा के जल से भर जाते हैं तो लोग हँसने लगे और बोले कि 'भला स्वर्ग कहा तक सब को भर सकता होगा!'

इस जनपद की राजधानी की उत्तर दिशा मे एक वेगवती नदी† (मागसिन) है जो शाले ‡ की ओर उत्तर-पूर्व को बहती है। सुगलिंग पर्वत के ऊँचे स्थान पर कोई वृक्ष वनस्पति नहीं उपजती। इसमें आठवें मास में तुषार पडता है और उतराही हवा १००० ली तक तुषार बरसाती है।

अत को नवें महीने के मध्यदशक में 'पो हो'†† जनपद में पहुँचे। यहा बडे बडे ऊँचे पर्वत और बड बडे गहरे खड्ड हैं। इस देश के राजा ने एक नगर बसाया है। पर्वत पर रहने के उद्देश से वह इसी नगर में रहता है। इस देशवालों का पहनावा अच्छा है, केवल वे चमडे के कुछ

१२—पो हो

---

* चीन को चीनी लोग मध्यदेश कहते हैं।

† चीनी भाषा का तिलककार कहता है कि सुगलिंग पर्वत के पश्चिम की नदियाँ पश्चिम दिशा की ओर बहती और समुद्र में गिरती हैं। बील साहिब कहते हैं कि यह नदी या तो 'कल्मोघ' 'वाक्रासो' है जो तेजाब में गिरती है। तेजाब यारकंद में गिरती है। अथवा 'सीतो' नदी है जिस पर यारकद नगर बसा है और जो लोब ह्रद मे गिरती है।

‡ बील साहेब का मत है कि यह सूले है जिसे काशगर कहते हैं।

†† बील इसे 'बोलोर' कहते हैं, पर संदिग्ध हृदय से।

वस्त्र धारण करते हैं। इतना जाड़ा है कि लोग भाग कर कंदराओं में घुस कर दिन काटते हैं—वायु और तुषार के मारे मनुष्य और पशु एक साथ रहते हैं। इस देश के दक्षिण हिमाद्रि है, वहां प्रातःकाल और सायंकाल मोती के गुच्छे के समान भाफ निकलती रहती है।

दसवें महीने के पहले दशक में येथा* जनपद में पहुँचे। इस देश के खेतों में पहाड़ी नदियों का पानी बहुत अधिक भर जाता है, वे बड़े उपजाऊ हो जाते हैं। घर घर के सामने (नदियां) बहती हैं। यहां नगरों में प्राचीर नहीं होते। शांतिरक्षा स्थायी सेना से होती है। वह इधर उधर फिरती रहती है। ये लोग भी ऊनी वस्त्र (नमदा) पहनते हैं। नदियों के किनारे किनारे हरी भरी झाड़ी उगी है। गरमी में लोग पहाड़ पर चले जाते हैं और जाड़े में वहां से भाग कर गाँवों में आकर रहते हैं। इनकी लिपि नहीं है। विनय दोषपूर्ण है। नक्षत्रों की गति का कुछ ज्ञान नहीं है, वर्ष की गणना में न मलमास है, न छोटे बड़े महीने हैं, केवल वर्ष को बारह भागों में बाँट लेते हैं और बस। सब आस पास की जातियां कर देती हैं, दक्षिण में तिग्लो तक की, † उत्तर में सारे लइ-ले: ‡

१३—येथा (हूण)

* यह हूण देश का नाम है।

† बील ने इसे तिहुल लिखा है। यह फाहियान का तोले जान पड़ता है जिसे दरद वा दरदिस्तान कहते हैं।

‡ बील ने इसे 'माल्वा' लिखा है।

तक की, पूर्व मे सुतन तक की और पश्चिम में पोसे* तक की। जब वे लोग सभा में राजा के लिये भेंट लेकर आते हैं तो चालीस फुट लंबी चौडी चांदनी बिछाई जाती है। ऊपर शामियाने की भाँति कपडा ताना जाता है, राजा राजकीय वस्त्र धारण करता और सोने के सिंहासन पर बैठता है। सिंहासन चार शार्दूल पक्षियों की पीठ पर रहता है।

जब वीई के राजदूतों को ले गए तो (राजा ने) बार बार दंडवत कर उनके हाथ से प्रत्ययपत्र लिया। सभा में जाने पर एक मनुष्य आनेवाले के नाम और उपाधि की सूचना देता है, फिर आनेवाले एक एक करके आते हैं, सब घोषणा हो जाने पर सभा का विसर्जन होता है। यही एक (अच्छी) रीति यहांवालों में है। यहा कोई बाजा है ही नहीं।

येथा की रानिया भी राजकीय वस्त्र धारण करती हैं। वह प्राय तीन तीन फुट और (इससे भी अधिक) पृथ्वी पर लोटते चलते हैं, इन वस्त्रों को उठाने के लिये परिचारिकाएँ रहती हैं। वे इस वस्त्र के अतिरिक्त सिर पर आठ फुट† की और (इससे)

---

* बील ने पोसे को फारस लिखा है। पर आगे चलकर सुगयुन ने पोसे के विषय में लिखा है कि 'देश बहुत संकुचित है।' इससे जान पडता है कि यह फारस नहीं है। संभवत पारद है।

† बील कहता है, 'यह चक्कर की बात जान पडती है कि रानियां ऐसा शिरोभूषण कैसे अपने सिर पर देकर जाती होंगी।' क्या करें, दूसरे प्रकार से इस वाक्य का अनुवाद ही नहीं कर सकते।'

अधिक लंबी एक सींग धारण करती हैं। यह (सींग) तीन फुट तक लाल मूँगे की होती है। यह अनेक रंगों में रँगी होती है। यही उनका शिरोभूषण है। जब रानियां कहीं जाती हैं तो उन्हें उठा कर ले जाते हैं। जब अंतःपुर में रहती हैं तो सुनहली चौकी पर बैठती हैं। चौकी में एक छन्दंता सफेद हाथी और (नीचे) चार सिंह बने रहते हैं। इस बात को छोड़ बड़े बड़े मंत्रियों की महिलाएँ रानियों के समान ही रहती हैं। वे भी सिर पर वैसे ही सींग धारण करती हैं। सींग पर बहु-मूल्य चंदोए की भाँति पर्दा लटकता रहता है। धनी और दरिद्रों के पहिनावे विलग विलग हैं। चारों बरबर जातियों में यह सब से प्रबल है। अधिकांश लोग बुद्धदेव को नहीं मानते। बहुतेरे मिथ्या देवताओं को पूजते हैं। ये जीते प्राणियों को मारते और उनका मांस खाते हैं। ये लोग सप्तरत्नों को जिन्हें आस पास के लोग कर में लाकर देते हैं और (अन्य) रत्नों को बहुत अधिक काम में लाते हैं। हमारी राजधानी से 'येथा' के देश की दूरी २०००० ली समझी जाती है।

ग्यारहवें महीने के प्रथम दशक में पोस्से देश की सीमा के भीतर पैर रखा। यह देश बहुत संकुचित (तंग) है। सात दिन आगे चल कर ऐसे लोग मिले जो पहाड़ों में रहते हैं और बड़े दरिद्र हैं। उनके व्यवहार रूखे और नीच हैं। यहां कोई राजा को देख सम्मान नहीं करता। राजा जब कहीं जाता आता है तो साथ कम अनुचर रहते हैं।

१४—पोस्से

इस देश में एक नदी है—पहले बहुत उथली थी, पर पीछे पर्वत धँस गया—नदी की धार फिर गई और दो खड्ड पड गए। यहाँ एक दुष्ट नाग रहने लगा। उसने बडी हानि पहुँचाई। गरमी में वह मनमाना सूखा डालता और जाडे में तुषार गिराता है। यात्रियों को उसके कारण सब भाँति के कष्ट उठाने पड़ते हैं। बर्फ इतनी चमकीली है कि आँखें चौंधिया जायँ, लोग आँख मूँदें वा अंधे बनें। पर नाग की पूजा चढा दें तो फिर उतना कष्ट नहीं झेलना पडता।

ग्यारहवें महीने के मध्य दशक में 'शियमी' के जनपद में पहुँचे। यह जनपद सुगलिग पर्वत उतरते ही पडता है। भूमि ऊबड खाबड, रहनेवाले दरिद्र, मार्ग इतने सकरे वो दृढ भयानक कि सवार घोडे पर अकेला कठिनाई से जा सके।

१७—शियमी

पोलूलाई* जनपद से उच्याग † जनपद तक जाने के लिये लोहे की जंजीर पर जाते हैं। जंजीर जिस पर जाते हैं अधर में टँगी है। नीचे ताकने पर भूमि नहीं

१८—पोलूलाई

* बील साहिब इसे बोलोर बतलाते हैं। कनिंगहम ने बोलोर को बाल्टी, (बाल्तिस्तान) बतलाया है। यूल बोलोर को पामीर के पूर्वोत्तर दिशा में बतलाते हैं। उनका कथन है कि बोलोर में बाल्तिस्तान और पामीर के दक्षिण किनारे के पर्वत सम्मिलित थे। चीनी लोग 'पोलूलो' शब्द से स्वात की उत्तरीय सीमा तक चित्राल का भी समावेश करते थे। बील का मत है कि इसी को सुयेनच्वांग ने 'पोलूलो' लिखा है।

† उद्यान।

दिखाई पड़ती है। (पैर) फिसलने पर किनारे कुछ थामने को नहीं, चट १०००० कदम नीचे धम से गिरे। इस कारण यात्री अंधड़ में पार नहीं जाते।

बारहवें महीने के पहले दशक में उद्यान जनपद में प्रवेश किया। यह जनपद उत्तर सुंगलिंग पर्वत से और दक्षिण हिंदुस्तान से मिला है। प्रकृति गरम और अनुकूल, राज्य कई सहस्र ली विस्तृत, जन और अन्न संपन्न, भूमि चीन की लिनजे उपत्यका* की भांति उपजाऊ, प्रकृति भी समानांतर।

१२—उद्यान

यहीं वह स्थान है जहां पेलो (वेस्संतर) ने अपनी संतान को दान कर दिया, बोधिसत्त्व ने अपना शरीर दे डाला†। यद्यपि ये प्राचीन काल की बातें हैं पर यहां कहावत अब तक चली आती है।

यहां का राजा उपवसथ के दिन निरामिषाशी रहता है‡, सायं प्रातः बुद्धदेव की पूजा करता है, डंके, शंख, वीणा, वंशी

---

* यह उपत्यका शानतुंग में है।

† बुद्धदेव ने एक बार जब वे बोधिसत्त्व थे अपना शरीर एक भूखी बाघिन को खिला दिया था। दे० परिशिष्ट।

‡ बील ने भाव न समझ कर 'The king of the country religiously observes vegetable diet; on fast days he pays adoration to Buddha, both morning and evening with sound of drum &c.' अनुवाद किया है। यह ठीक नहीं जान पड़ता।

और नाना भाँति के तूर्य* बजते हैं। अपराह्न में वह अपने राज्य का काम करता है। यदि कोई किसी को मार डालता है तो उसे प्राणदंड नहीं दिया जाता, रोटी पानी देकर उसे मरु पर्वत पर निर्वासित कर देते हैं। संदिग्ध दशा में विष से परीक्षा की जाती है और परीक्षा के अनुसार न्याय होता है।

समय पर नदी काट कर खेत में पानी भर लेते हैं, इससे खेत में मिट्टी पड़ती और वे उपजाऊ हो जाते हैं। देश संपन्न है ढेर के ढेर सैकड़ों प्रकार के अन्न होते हैं, पाँचों प्रकार के फल पकते हैं। सायंकाल के समय चारों ओर से घंटानाद होता है, आकाश भर जाता है, पृथ्वी नाना वर्ण के फूलों से पूरित है। फूल जाड़े गरमी में फूलते रहते हैं, यती गृही तोड़ तोड़ भगवान को चढ़ाते हैं।

यहां के राजा ने जब सुगयुन को देखा (तब पूछा कि कौन हो)। जब (सुगयुन ने) कहा कि (हम) महावीई (सम्राज्ञी) के राजदूत (होकर) आए हैं तब उसने (प्रत्यय) पत्र को बड़े आदर से लिया। यह जानने पर कि विधवा राजमाता बौद्धधर्म पर विशेष श्रद्धा रखती हैं उसने झट पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़ भक्तिभाव से अपना सिर झुकाया। फिर एक दुभाषिया बुलवाया जो वीई की भाषा समझ सकता था और उसके द्वारा सुगयुन से प्रश्न पूछा कि 'क्या मेरे श्रेष्ठ मिलनेवाले उस देश से आते हैं जहां सूर्योदय होता है?' सुगयुन ने उत्तर दिया कि हमारे देश के पूर्व महासागर है,। तथागत की महिमा से उसी में से सूर्य्य

---

* मुँह से जो बाजे फूँक कर बजाए जाते हैं इन्हें तूर्य कहते हैं।

निकलता है । राजा ने पुनः पूछा कि क्या उस देश में महात्मा लोग उत्पन्न होते हैं। सुंगयुन ने कानफ़्सस* के गुणानुवाद को, 'चो'† और 'लाओ' ‡ के (यश को) और च्वांग †† (काल) की (महिमा) का वर्णन करना आरंभ किया ; फिर पेंग लइशान§ का (वर्णन किया) जहां चांदी के प्राचीर और सोने के प्रासाद हैं, फिर वहां रहनेवाले भूत प्रेत और महात्माओं का (वर्णन किया), इसके अतिरिक्त उसने क्वानलो की शकुनपरीक्षा, ह्वातो के आयुर्वेद और सोज़े की तंत्रविद्या का विवरण किया ; प्रत्येक विषय को समझाते और उसके

---

* चीन देश का एक प्रसिद्ध महात्मा । इसका जन्म ५५१ वर्ष ईसा के पूर्व हुआ था और ७६ वर्ष की अवस्था में ४७९ ईसा के पूर्व इसका देहांत हुआ । यह आचार धर्म का प्रवर्तक था ।

† तांग वंश के नाश होने पर यह वंश चीन का सम्राट् हुआ था । वूवांग इस वंश का प्रथम राजा हुआ । वह बड़ा बुद्धिमान धार्मिक और प्रजाहितैषी था । इस वंश का राज्य १७६६ से २५५ वर्ष ईसा के पूर्व तक रहा ।

‡ यह 'ताव' धर्म का प्रथम आचार्य्य था । इसका सिद्धांत वेदांत के अद्वैत मत सा था । यह कानफूसस का समकालीन और उससे कुछ ज्येष्ठ था ।

†† संभवतः यह चांग सियंग वांग था जिसके वंश के चेहवांगते ने राजधानी बनवाई , सड़कें निकालीं और अनेक उन्नति के काम किए थे ।

§ चीनवालों का विश्वास है कि चीन के पूर्व समुद्र में तीन टापू है, उन्हीं में एक यह भी है । इसमें अप्सरा, भूत, प्रेत, ऋषि आदि वास करते हैं ।

लक्षणों को बतलाते हुए उसने अपना भाषण समाप्त किया। तब राजा ने कहा यदि ये बाते वैसी ही हैं जैसी आप कह रहे हैं तो आपका देश बुद्ध का देश है और मुझे मरते समय यह प्रार्थना करनी चाहिए कि मेरा जन्म उसी देश में हो।

१८—उद्यान के तीर्थस्थान

इसके अनन्तर सुगयुन हुईसाग के साथ नगर से उन चिह्नों के दर्शन के लिये चला जो तथागत के उपदेश के (स्थानो पर) थे। नदी के पूर्व वह स्थान है जहा बुद्धदेव ने वस्त्र सुखाया था। पहले पहल जब बुद्धदेव उद्यान जनपद में आए तो वे एक नागराज को उपदेश करने आए थे। नागराज ने बुद्धदेव पर कोप किया और बहुत आंधी पानी बरसाया (उठाया)। बुद्धदेव की सघाती भीगने से लथपथ होगई। पानी बद होने पर बुद्धदेव एक शिला पर ठहरे और पूर्वाभिमुख बैठे, कषाय सुखलाया। तब से बहुत वर्ष हुए, वस्त्र के चिह्न दिखाई पड़ते हैं, मानो अभी के हैं, केवल सीवन और किनारे पर बाने के चिह्न देख पड़ते हैं, देखने से जान पड़ता है कि वस्त्र उठाया नहीं गया है और किसी से उठवाना है, मानों चिह्न उठाए जा सकते हैं। जहा बुद्धदेव बैठे थे वहां स्तूप बना है और जहा कषाय सुखलाया था वहा भी स्तूप बना है। नदी के पश्चिम एक तालाब है, उसमें नागराज रहता है। तालाब के किनारे एक विहार है, पचास से अधिक श्रमण पूजा करते हैं। नागराज नित्य एक न एक अद्भुत रूप धारण करता रहता है।

जनपद का राजा उसकी प्रसन्नता के लिये सोना रत्न और अन्य बहुमूल्य उपहार देता है, उसी तालाब में डालता है, उनमें जो पीछे के मार्ग से निकल जाते हैं श्रमणों को लेने दिए जाते हैं। नाग इस प्रकार विहार का आवश्यक व्यय देता है इसीलिये लोग इसे नागराज का विहार कहते हैं।

राजधानी से ८० ली उत्तर एक शिला पर बुद्धदेव की पादुका का चिह्न है। लोगों ने उस पर स्तूप बनाया है। शिला पर पादुका का चिह्न है जैसे कीचड़ पर पैर पड़ने का। इसकी लंबाई का कुछ ठीक नहीं, कभी बढ़ती है कभी घटती है। अब स्तूप के पास एक विहार भी बना है। ७० से अधिक श्रमणों के रहने की जगह है। स्तूप से २० पग दक्षिण चट्टान से एक सोता निकलता है। बुद्धदेव ने एक बार दंत-धावन करके दंतकाष्ट भूमि पर फेंक दिया था। वह झट लग गया, अब बड़ा पेड़ है, तातारी उसे 'पोलू'* कहते हैं।

१६—पादुका

नगर के उत्तर 'तोलो' (तारा ?) विहार है। उसमें बुद्धदेव की पूजा के लिये अनगिनत उपकरण हैं। विहार विशाल है। चारों ओर भिक्षुओं के लिये कोठरियां हैं, सोने की ६० पुरुषा-कार मूर्तियां हैं। वार्षिक परिषद के समय राजा भिक्षुओं को इसीमें आमंत्रित करता है। उस समय देश भर के श्रमण बादल की भांति एकत्र होते हैं। सुंगयुन और हुईसांग ने उन

* पीलू वृक्ष।

भिक्षुओं के कठिन विनय और घोर तपश्चर्य्या को देखकर, इस विचार से कि उन श्रमणों के दृष्टांत से धर्मभाव बढ़ जाय, विहार के काम के लिये, पूजा और सेचन मार्जन करने को, दो सेवक रख दिए।

राजधानी से दक्षिण-पूर्व एक पहाड़ी देश से होकर ८ दिन में उस स्थान पर पहुँचे जहां तथागत ने (पूर्वजन्म में) तप करते हुए अपना शरीर एक भूखी बाघिन* को खाने के लिये दिया था। यह ऊँचा पर्वत है जिसके भृगु ढालू और चोटियाँ ऊँची और अभ्रस्पर्शी हैं। यहां कल्पदारु और लिगची के वृक्ष उत्पन्न होते हैं। यहां के वन झरने, सीधे हिरन और रंग रंग के फूल देख आँखों को सुख मिलता है। सुगयुन और हुईसांग ने अपने यात्राव्यय के लिये लाए धन से थोड़ा थोड़ा लगा कर इस पर्वत के शिखर पर एक स्तूप बनवाया और पत्थर पर चौकोन अक्षरों में वीई वंश की कीर्ति-प्रशस्ति खुदवा दी। इस पर्वत पर 'अस्थिचय' †नाम विहार है। ३०० से अधिक श्रमण रहते हैं।

२०—व्याघ्री को शरीरदान

राजधानी से दक्षिण सौ से ऊपर ली पर वह स्थान पड़ता है जहां मोहिड ‡ में रहते हुए पूर्वजन्म में

२१—मोहिड

* बील ने— Tiger और समद्दार ने 'व्याघ्र' अनुवाद किया है। यह जातक के विपरीत है।

† 'रेमुसट' ने इसे 'सुवर्णचय' (Collected gold) लिखा है।

‡ बील लिखते हैं कि 'मोहिड' मगंस है। अतः यह देश मारजियाना होगा। पर यहां तो आघस के देश का अभिप्राय जान पड़ता है।

तथागत (जूलइ) ने अपनी खाल और अस्थि लिखने के लिये निकाली थी। राजा अशोक ने इन चिह्नों के संरक्षणार्थ उन पर स्तूप बनवा दिया। यह १० चांग (१२० फुट) ऊँचा है। उस स्थान पर जहां अपनी अस्थि तोड़ी थी, मज्जा बही थी और चट्टान के ऊपर फैल गई थी, उसका रंग अब तक ज्यों का त्यों बना है और इतनी चिकनी है मानों अभी गिरी है।

२२-शेनशी वा वंकगिरि

राजधानी से दक्षिण-पश्चिम ५०० ली पर शेनशी * पर्वत (वा सुदान का पर्वत) है। ग्रंथों † में यहां के मधुर जल और सुस्वादु फलों का वर्णन है। पर्वत की दरी सुखस्पर्श उष्ण है; वृक्ष और झाड़ियाँ सदा हरी भरी रहती हैं। यात्री पहुँचे तब मंद मंद वायु पंखा झल रही थी, चिड़ियाँ मधुर गान करती थीं, वृक्षों पर वसंत की बहार थी, तितलियां अनेक फूलों पर उड़ रही थीं—इस मनोहर दृश्य को दूर देश में देखा तो इन्हें अपने घर का स्मरण हो आया। इस चिंता से उस (सुंगयुन) पर इतनी उदासी छा गई कि वह रोगग्रस्त हो गया। एक महीना पीछे एक ब्राह्मण ने उसे कोई यंत्र दिया तब वह अच्छा हुआ ‡।

---

* चीनी भाषा में शेनशी 'सुदान' का नाम है।

† जातक, अवदान, आदि ग्रंथ।

‡ प्रो० समद्दार ने भ्रमवश इसका यह अनुवाद किया है—'याहा हउक, एक मास अतिवाहित हइले तिनि ब्राह्मणगणदत्त औषध सेवन करिया स्वस्थ हइयाछिलेन'।

सुदान के पर्वत के शिखर से दक्षिण-पूर्व दिशा में कुमार की एक कदरा है जिसमें दो गुफाएं हैं। इस कंदरा से १० पग पर एक बड़ी चौकोर शिला है। कहते हैं इसी में कुमार बैठा करता था *। इसी पर अशोक ने एक स्तूप बनवाया है।

इस स्तूप से एक ली दक्षिण राजकुमार की पर्णशाला का स्थान है। स्तूप से एक ही ली उत्तर-पूर्व ५० पग नीचे उतरने पर वह स्थान पड़ता है जहा कुमार के पुत्र और पुत्री पेड़ की आड़ में छिपे फिरते थे और जाते न थे। इस पर ब्राह्मण ने उन्हें छड़ी से इतना पीटा था कि रक्त से पृथ्वी भीग गई। वह वृक्ष अब तक है और जहा रक्त गिरा था वहां अब मीठे पानी का सोता बहता है।

इस कदरा से तीन ली पश्चिम वह स्थान है जहा देवराज शक्र ने सिंह का रूप धर कर मार्ग में बैठ 'मानकिया'† को

* वेस्संतर जातक,में लिखा है कि सुदान कुमार के पिता संद के यहा एक सफेद हाथी था। यह हाथी आकाश से पानी बरसा सक्ता था। सुदान ने इसे कलिंग के राजा के धोखे में आकर दे दिया। इस पर सारी प्रजा बिगड़ गई और संद को विवश हो सुदान कुमार को उसकी स्त्री माद्रीदेवी तथा पुत्र और पुत्री के साथ निकाल देना पड़ा। राजकुमार सुदान अपने कुटुंब के साथ वकगिरि पर आकर रहता था।

† 'मानकिया' का अर्थ है महिला। यहा यह शब्द सुदान कुमार की स्त्री माद्री के लिये आया है। वेस्संतर जातक में लिखा है कि देवराज एक बार सुदान कुमार की महिषी माद्री के बाहर से कदरा में

राह रोकी थी। पत्थर पर बाल और नख के चिह्न बने हैं। वह स्थान भी (यहीं है) जहां अजितकूट * और उसके शिष्य पिता माता (कुमार और कुमार की पत्नी) की शुश्रूषा करते थे। इन सब स्थानों पर स्तूप बने हैं। इस पर्वत में पहले ५०० अर्हतों के आसन थे, उत्तर दक्षिण दो पाँति में, एक दूसरे के सामने सामने। यहां एक विहार है, २०० श्रमण रहते हैं।

जिस झरने से कुमार पानी पीते थे उसके उत्तर एक विहार है। यहां जंगली गदहों का एक झुंड चरने आया करता है। कोई उन्हें लाता नहीं, बड़े तड़के आते हैं, दोपहर तक चरते और विहार की रक्षा करते हैं। ये स्तूपरक्षक प्रेत ऋषि 'उ:पो†' के नियुक्त किए हुए हैं।

इस विहार में पहले एक स्वामी (श्रमण) रहते थे। वे वहां निरंतर झाड़ू देते थे, देते देते समाधि लग गई। विहार के कर्मदान ‡ ने उनका भस्मांत संस्कार कर दिया और बिना यह देखे उठा ले गया कि उनकी खाल उनकी संकुचित हड्डियों पर झूलती है। ऋषि उ:पो सामनेर के कर्म झाड़ू बहारू को करते

आते समय मार्ग में सिंह का रूप धर कर बैठे थे और उन्होंने उसकी राह रोकी थी।

* हीनयान के जातक में इसे अच्युत लिखा है। यह संन्यासी था और पास ही पर्वत पर अपने शिष्यों के साथ रहता था।

† बील कहते हैं कि पहिला चिह्न 'उः' संदिग्ध है।

‡ विहार का 'कार्य्याधिकारी' वा कोठारी।

रहे। इस पर देश के राजा ने ऋषि का मदिर बनवाया। उसमें उनकी प्रतिरूप मूर्ति रख दी और उस पर बहुत सा सोने का पत्र चढा दिया।

इस पर्वत की चोटी के पास 'पोकीन' का एक विहार यक्षो का बनाया है। इसमें लगभग ८० श्रमण हैं। वे कहते हैं कि इस विहार में अर्हत और यक्ष पूजा सेचन और मार्जन करने आते हैं और इसके लिये लकडी इकट्ठी कर जाते हैं। साधारण श्रमण को यहां रहने की आज्ञा नहीं। 'महावीई' वश का श्रमण* 'तौ-पिग' इस विहार में पूजा करने आया, पर वह पूजा करके चला गया, यहा ठहरने का उसको साहस न पडा।

'चिगक्वांग'† के पहले वर्ष के चौथे मास के मध्य दशक में गाधार जनपद में पहुँचे। यह जनपद उद्यान से बहुत मिलता जुलता है। इसे पहले 'यी-पोलो' ‡ कहते थे। यह वही देश है जिसे

२३—गाधार राज्य।

---

* यह 'श्रमण' सुगयुन के पूर्व आया था। वीई राजवश के शासन का आरभ ४२० ई० में हुआ। वह कब आया इसका निर्णय होना कठिन है। पर इसमें सदेह नहीं कि वह ४२० ई० के पीछे और ५१७ ई० के पूर्व आया था।

† चिगक्वांग का समय ५२० ई० से आरभ हुआ।

‡ यह नाम संभवत 'अपलाल' नाग के कारण पडा। अपलाल उद्यान की राजधानी 'मगली' के उत्तर पूर्व एक हृद में रहता था। उसी हृद से सुवास्तु या स्वात नदी निकलती है।

येथा* लोगों ने ध्वस्त किया और पीछे 'लाइलि:'† को यहां की राजगद्दी पर बैठाया जिसे दो पीढ़ी बीती है। राजा स्वभाव का क्रोधी और कुनही था और अत्यंत क्रूरता नृशंसता करता था। उसका बुद्धधर्म पर विश्वास नहीं था, भूत पिशाच की पूजा में रुचि थी। देश-वासी सब ब्राह्मण जाति के थे जो बौद्ध धर्म पर श्रद्धा और सूत्र के पाठ में रुचि रखते थे। जब इस राजा को अधिकार मिला सब कर्मों में घोर विघ्न पड़ा। केवल अपने पराक्रम के बल उसने 'किपिन'‡ (कुफेन) जनपद से जनपद की सीमा का विवाद कर युद्ध छेड़ रखा है और तीन वर्ष से उसकी सारी सेना इसी में लगी है।

राजा के पास ७०० लड़ाई के हाथी हैं, प्रत्येक पर दस दस योद्धा तलवार और बर्छी लेकर चढ़ते हैं, हाथियों की सूंड में एक एक तलवार रहती है, मुँहमिल होने पर उसीसे लड़ते हैं। राजा अपनी सेना लिये निरंतर सीमा पर रहता है और कभी राजधानी में नहीं आता। इस कारण बूढ़ों को काम करना पड़ता है और पृथग्जन (प्रजावर्ग) पीड़ित हैं।

---

* बील कहते हैं कि संभवतः यह कितोलो (कतलू) के आक्रमण की बात जान पड़ती है। उसने पांचवीं शताब्दी के आरंभ में आक्रमण किया था। उसने गांधार विजय किया था और पेशावर को अपनी राजधानी बनाया था।

† बील कहते हैं कि वाक्य स्पष्ट नहीं है।

‡ काबुल—उस समय 'महायूची' के अधिकार में था। काबुल राजधानी था।

सुगयुन प्रत्ययपत्र देने के लिये राजा के शिविर में गया*। राजा ने उसके साथ बडी रुखाई की, प्रणाम नहीं किया, पत्र लेते समय बैठा रहा।

सुगयुन ने समझा कि ये दूर देश के बरबर लोकोपकार करना नहीं जानते और उनकी उद्धतता नहीं रुक सकती। राजा ने दुभापिया बुलवाया और सुगयुन से कहा कि 'क्या इन देशों से होकर आने में और मार्ग में इतनी कठिनाइया झेलने से आपको बहुत कष्ट तो नहीं हुआ ?' सुगयुन ने उत्तर दिया कि हमारी महारानी ने हमें इतने दूर देशों में महायान की पुस्तकें खोजने के लिये भेजा है। यह सच है कि राह में बडी कठिनाइया हैं तो भी 'थक गए' यह कहने का साहस नहीं कर सकते। पर आप और आपकी सेना जो यहा आपके राज्य की सीमा पर आई हैं गरमी और जाडे के विकार सहती हैं। क्या आप भी प्राय. नहीं थके ? राजा ने उत्तर दिया कि 'इतने क्षुद्र जनपद की अधीनता स्वीकार करना असभव है—खेद है कि आपने ऐसा प्रश्न क्यों किया ?' सुगयुन ने पहले ही राजा से बात करते जाना कि यह बरबर विनयपूर्वक अपना कर्तव्य पालन करने में असमर्थ है और पत्र लेकर अब भी बैठा है, और उसी को फिर उत्तर देना है। उसने राजा को अपने समान मनुष्य की भांति फटकारने का

---

* यह राजा संभवत 'थोनोवेइ' था। कहते हैं कि उसने वीई तातार को प्रणाम करने से इनकार किया। इसी बात को सुगयुन ने आगे लिखा है।

निश्चय कर लिया और यह कहा—पर्वत बड़े भी हैं छोटे भी, नदियां बड़ी भी हैं छोटी भी, मनुष्यों में भी भेद है, कोई शिष्ट होते हैं कोई अशिष्ट। 'यीथा' और उद्यान के राजाओं ने हमारा पत्र सम्मानपूर्वक लिया, पर केवल आपने ही हमारा कुछ सम्मान नहीं किया। राजा ने उत्तर में कहा कि जब मैं वीई के राजा को देखूं तब मैं उन्हें प्रणाम करूं। पर बैठ कर उनके पत्र को लेना और पढ़ना, इसमें क्या दोष हो सकता है? जब लोग अपने माता पिता के पत्र को पाते हैं तो उसे पढ़ने के लिये खड़े नहीं हो जाते। महावीई सम्राट हमारे माता पिता के तुल्य हैं और यह अनुचित नहीं है—फिर मैं बैठे ही उस पत्र को पढ़ूंगा जो आप लाए हैं। सुंगयुन बिना किसी प्रकार का अभिवादन किए ही चल दिया। वह एक विहार में ठहरा था, उसमें उसका बहुत अल्प सत्कार हुआ था। इसी समय पोटई* जनपद से दो सिंहशावक गांधार के राजा के पास भेंट भेजे गए। सुंगयुन को उन्हें देखने का अवसर मिला था। उसने उनकी आग्नेय प्रकृति और सौम्य आकृति देखी। इन जंतुओं के चित्र जो चीन में प्रचरित हैं इनसे सर्वथा नहीं मिलते हैं।

---

* जूलियन का मत है कि यह संभवतः वही स्थान है जिसे सुयेनच्वांग ने प्रथम खंड में 'फाती' लिखा है। वह बोखारा से ४०० ली पश्चिम है। यह 'फाती' आज कल 'वेतिक' कहलाता है। यह आक्सस नदी पर है, पर बील साहब कहते हैं कि मूल ऐसा अपूर्ण है कि पोटई वदख़शां का बोधक हो सकता है।

तदनतर पाच दिन पश्चिम चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहा तथागत* ने एक मनुष्य के निमित्त अपना सिर दान कर दिया था । वहा एक स्तूप और विहार बने हैं, लगभग २० श्रमण हैं ।

२४—तक्षशिला

तीन दिन पश्चिम चलकर सिंधु (सिंधु) महानद पर पहुँचे । इस नद के पश्चिम किनारे पर वह स्थान है जहा तथागत ने मकर† नामक महामत्स्य का शरीर धारण किया और नद से बाहर आकर बारह वर्ष तक लोगों को अपने मांस से पाला था । इस स्थान पर एक स्मारक स्तूप बना है । शिला पर अब तक मछली के छिलके के चिह्न देखाई पडते हैं ।

फिर पश्चिम तेरह दिन चलकर 'फोशा-फू'‡ नगर में पहुँचे । नदी की उपत्यका (दरी) की मिट्टी उपजाऊ चिकनी है । नगर के प्राचीर में सिंहद्वार§ हैं । बस्ती घनी है, बाग बगीचे बहुत से हैं, पानी के स्रोतों के कारण

२५—पुरुषपुर ।

---

* बोधिसत्व चाहिए ।

† चीनी भाषा में 'माकेई' है जो मकर का ही रूप है ।

‡ इसी को सुयेनच्वाग ने पोलूशा (बस्रा) लिखा है और फाहियान ने 'फोलूश' लिखा है । आज कल इसे पुरुषपुर (पेशावर) कहते हैं ।

§ सिंहद्वार से अभिप्राय उस द्वार से है जहा नगर की रक्षा के लिये रक्षक नियुक्त रहते हैं (gate-defence) ।

भूमि उपजाऊ बनी रहती है और नगर* में अमूल्य मणि रत्न प्रभूत हैं। अधिवासी सत्यपरायण और धर्मात्मा हैं। नगर में ब्राह्मणों का एक प्राचीन मंदिर है उसे 'सांगतेः' (संगति)† कहते हैं। सब धर्मनिष्ठ उसमें भरे रहते हैं और उसको बड़ा प्रतिष्ठा करते हैं।

नगर के उत्तर एक ली पर श्वेत-हस्तीप्रासाद‡ विहार है।

---

* बील ने लिखा है 'and as for rest' जिसका अर्थ है 'शेष के विषय में', जिसका भाव है 'नगर' में।

† बील लिखते हैं कि मैं समझता हूं कि इस वाक्य में fan (फान) जिसका अर्थ (all) 'सब' है fan (फान) के स्थान पर भूल से छप गया है। ऐसी दशा में 'वीइ फान' (wei fan) का अर्थ होता है विधर्मी ब्राह्मण (heretical Brahmans)। यदि इस वाक्य का यह अनुवाद ठीक नहीं है तो संभवतः ऐसा अनुवाद होगा कि उस नगर के भीतर और बाहर बहुत से पुराने मंदिर हैं जिन्हें सांगतेः (संधि = संघ) कहते हैं। [Within and without this city, there are very many old temples, which are named 'Sangteh' (sandhi, union or assembly] पर यह ठीक नहीं जान पड़ता। कारण यह है कि पंजाब में अब तक 'संगत' शब्द का व्यवहार सिक्खों में मंदिर के अर्थ में जान पड़ता है। भारतवर्ष की यह प्राचीन प्रथा है कि एक स्थान धर्मचर्चा के लिये रहता था जहां धर्म का उपदेश हुआ करता था। फाहियान को ऐसे बहुत से स्थान लंका में मिले थे। पंजाब में उसीके अनुकरण पर सिक्खों ने 'संगत' का संगठन किया था।

‡ यह किस वृक्ष का नाम है समझ में नहीं आता। बील लिखते हैं कि संभवतः इसी को सुयेनच्वांग ने पीलुसार लिखा हो।

विहार में बुद्धदेव की बडी पूजा* होती है। यहा सुभ्रलकृत और वडी सुदर सुदर पत्थर की वहुत सी मूर्तिया हैं। उन पर सोने के पत्र ऐसे चढे हैं कि आँखें चौंधिया जाती हैं। विहार के सामने उसीके अधिकार में एक वृक्ष है जिसे 'श्वेतहस्तो' का वृक्ष कहते हैं। इसीसे इसका यह नाम पडा। इसके पत्ते और फूल चोनी खजूर की नाईं होते हैं और फल जाडे में पकने लगते हैं। पुराने लोगों में यह कहावत चली आती है कि जब इस वृक्ष का नाश हो जायगा तब सनातन बौद्ध धर्म का भी नाश हो जायगा। मदिर के भीतर राजकुमार और उसकी पत्नी की मूर्ति है, ब्राह्मण (उनके) पुत्र और कन्या को माग रहा है। तातारी इसे देख आंसू नहीं रोक सकते।

पश्चिम ओर एक दिन चल कर उस स्थान पर पहुँचे जहां तथागत ने (पूर्वजन्म में) दान करने के लिये अपनी आँख निकाली थीं†। वहा एक स्तूप और एक विहार है। विहार में एक पत्थर पर कश्यप बुद्ध के पैर का चिह्न है।

फिर एक दिन और पश्चिम जा कर एक गहरी नदी‡

* इस वाक्य का अनुवाद बील ने, Within the temple all is devoted to the service of Buddha, अर्थात् 'इस मदिर के भीतर सब कुछ बुद्धदेव की पूजा के निमित्त किया जाता है' और प्रो० समद्दार ने "एई मदिरसंक्रात व्यक्तिगण बौद्धधर्मावलबी" किया है।

† वेस्संतर जातक देखो।

‡ यह नदी सिंधु थी।

२६—गान्धार की राजधानी

उतरे। यह ३०० पग चौड़ी है। इससे ६० ली दक्षिण-पश्चिम पर गांधार जनपद की राजधानी* मिली। इस नगर से† ७ली दक्षिण पूर्व सिओःलो‡ फेओथो (शूलस्तूप) है।

इस स्तूप का कारण ढूँढ़ने से जान पड़ा कि जब तथागत इस लोक मे थे तब वे इस देश से अपने शिष्यों समेत उपदेश के लिये जा रहे थे। उसी समय नगर की पूर्व दिशा में उपदेश करते हुए उन्होंने कहा था कि 'मेरे परिनिर्वाण से तीन सौ वर्ष बीतने पर इस देश में कनिष्क नाम का राजा होगा। वह यहां एक स्तूप बनवाएगा।' तदनुसार तीन सौ वर्ष बीतने पर उसी नाम का राजा हुआ। एक समय वह नगर के पूर्व जा रहा था। उसने चार लड़कों को गोबर का स्तूप बनाते देखा। सब देखते देखते अंतर्धान हो गए§। राजा यह अलौकिक बात देख चौंक पड़ा और उसने तुरंत उस पर एक स्तूप बनवा दिया। पर छोटा स्तूप धीरे धीरे बढ़ता गया और बाहर निकल आया और ४०० फुट

---

* बील इसे पेशावर बतलाते हैं।

† 'तावयुंग' के यात्रा-विवरण में इसे 'नगर से चार ली पूर्व' लिखा है। ची० यह तावयुंग कौन था इसका पता नहीं चलता है। कहीं तावयिंग तो नहीं है। दे० पृ० २५ की टिप्पणी।

‡ सिओःली का अर्थ चीनी भाषा में चटक है। पर यह शूल का अनुकरण जान पड़ता है। स्तूप के ऊपर एक बड़ा 'दंड' लगा था।

§ तावयुंग के यात्राविवरण में लिखा है कि 'एक लड़के ने आकाश में जाकर राजा की ओर मुहँ कर एक गाथा पढ़ी'। ची०

रससक गया और वहा जाकर ठहरा। फिर राजा ने अपने स्तूप के आधार को ३००* पग से अधिक विस्तृत कर दिया। सब के ऊपर एक सीधा कलशदड† स्थापित कर दिया। वास्तु भर मे उसने लकडी लगाई थी और ऊपर जाने के लिये सीढिया बनवाई थीं। छत में सब प्रकार की लकडिया लगी थीं। सब मिल कर तेरह खड थे। ऊपर ३ फुट‡ लबा लोहे का कलशदड था जिसमें तेरह सुनहली कगनियां थीं। उँचाई भूमि से सब ७०० फुट थी §। यह प्रशसनीय कृत्य बन गया, गोबर का स्तूप बडे स्तूप के दक्षिण तीन फुट पर पहले की भाति बना ही रह गया। ब्राह्मणों ने इसे न मान कर कि यह गोवर का है, इसमें देखने के लिये छेद किया। यद्यपि इन बातों को हुए वर्षो बीत गए पर स्तूप बिगडा नहीं, और यद्यपि लोगो ने उस छेद को सुगधित मिट्टी से बद करने की चेष्टा की पर वे उसे बद न कर सके। इसके ऊपर अब एक छतरी लगी है। सिम्रो ली स्तूप जब से बना है तीन वार बिजली गिरने से टूट चुका है पर जनपद के राजाओ ने इसकी मरम्मत करा दी है। बूढे लोग कहते हैं कि 'जब इस

---

* तावयुंग के यात्रा विवरण में ३९० पग है।

† तावयुग के यात्रा-विवरण में इसे ३९ फुट ऊँचा लिखा है।

‡ बील कहते हैं कि यहा मूल में भ्रम है। दड की ऊँचाई तीस फुट होनी चाहिए।

§ तावयुन का कथन है कि लौहदड ८८$\frac{४}{१०}$ फुट का था, पद्रह चक्कर थे और भूमि से ६३$\frac{२}{१०}$ चाग (७४३ फुट) था।

स्तूप का अंत को बिजली से ध्वंस हो जायगा तब बौद्ध धर्म का भी चय हो जायगा' * ।

---

* तावयुंग के यात्रा-विवरण में लिखा है कि 'जब राजा समस्त वास्तु बनवा चुका और सिर पर लौहदंड चढ़ाना रह गया, तो उसे जान पड़ा कि यह भारी दंड ऊपर नहीं चढ़ सकता। इसलिये वह चारों कोनों पर ऊँची मचान बनवाने लगा; इस काम में उसने बहुत धन व्यय किया, और फिर अपनी रानी और कुमारों को लेकर इस पर चढ़ कर श्रद्धा और भक्ति (हृदय और आत्मबल) से धूप जलाया, फूल चढ़ाया; फिर गृध्र यंत्र से उस बोझे को उठाया और इस प्रकार वह इसको स्थान पर पहुँचा सका। इसीलिये तातारी कहते हैं कि इस काम में चातुर्महाराजों ने राजा की सहायता की थी; यदि वे ऐसा न करते, तो कोई मानवशक्ति कुछ नहीं कर सकती थी। स्तूप के भीतर सब प्रकार के बौद्ध (पूजा) पात्र हैं। वहां सुवर्ण और सहस्रो प्रकार की तथा नाना वर्ण की मणियां हैं जिनका गिनना सहज काम नहीं है। सूर्योदय के समय कलसी की सुनहली कंगनियां चमाचम चमकने लगती हैं और प्रातःकाल की मृदु मंद वायु महार्घ घंटियों को (जो छत में वा 'कलसी' में लटकी हैं) मधुर ध्वनि से बजाती है। पश्चिम देश के स्तूपों में यह सब से उत्तम है। जब यह स्तूप पहले बना था तो इसके ऊपर जाल बनाने के लिये सच्चे मोती लगे थे; पर कई वर्ष पीछे राजा ने इस अलंकरण के असाधारण मूल्य पर ध्यान करके अपने मन में सोचा कि मेरे अंत्येष्टि के पीछे भय है कि कोई आक्रामक (शत्रु) उन्हें ले जाय; वा मान लिया कि कहीं स्तूप गिर पड़ा तो ऐसा कोई न मिलेगा जो इसे बनवा सके। यह विचार उसने मोतियों के जाल को निकलवा लिया और एक ताम्रघट में रख, स्तूप से उत्तर पश्चिम सौ पग पर ले जा कर भूमि में गाड़ दिया। उस स्थान पर एक वृक्ष लगा दिया जिसे पोताइ (बोधि) कहते हैं। उसकी डालियां चारों

सिओ ली स्तूप से दक्षिण ओर ५० पग पर एक पत्थर का स्तूप है, आकार में सर्वथा गोल और दो चाग (२७ फुट) ऊँचा है। इस स्तूप में अनेक अलौकिक चमत्कार हैं, यथा लोग इसे छूकर यह जान सकते हैं कि वे भाग्यवान् हैं वा अभागे। यदि वे भाग्यवान् हुए तो छूते ही स्वर्ण घटिकाए बजेंगी, पर यदि अभागे हो तो कोई वेग से भले ही स्तूप को धक्के दे बजेंगी ही नहीं। हुईसांग अपने देश से आया था और डरता था कि कहीं लौटने का सौभाग्य न मिले। उसने इस पुण्यस्तूप की पूजा की और सगुन के लिये प्रार्थना की। इस पर उसने उसे केवल उँगली से छू दिया तो तुरत घटिया बजने लगीं। इस सगुन के पाने से उसके मन में धैर्य हुआ और फल से सगुन की सत्यता प्रमाणित हो गई*।

जब हुईसांग पहले राजधानी को गया था तब महारानी ने उसे

ओर फैल कर अपनी घनी पत्तियों से उस स्थान पर सर्वथा धूप से छाया रखती हैं। वृक्ष के सब ओर बुद्धदेव की डेढ़ चाग (१७ फुट) ऊंची बैठी हुई प्रतिमाए हैं। इन रत्नों की रक्षा के लिये चार नाग सदा बने रहते हैं, यदि कोई (मन में) लालच करता है तो उसी क्षण विपत्ति में पड़ता है। यहां एक पत्थर की शिला गड़ी है और उस पर आदेश के ये वाक्य खुदे हैं। "अतःपर यदि यह स्तूप नष्ट हो जाय तो धर्मात्मा पुरुष बहुत ढूंढने पर इन (बहुत मूल्य के) मोतियों को पावेगा कि जिनसे वह इसे फिर बनवा दे"।

* बील टिप्पणी में लिखते हैं 'अथवा यह समझ उसने संतोष किया कि काम करके यह कुशलपूर्वक लौटेगा।'

सौ फुट लंबी एक हज़ार पँचरंगी पताकाएं और पाँच सौ सुगंधित घास की रंग बिरंगे रेशमी (आसन वा चटाइयां ?) दी थीं। राजकुमार राजन्यवंधु और सभ्यों ने दो सहस्र पताकाएं दी थीं। हुईसांग ने खुतन से गांधार तक की यात्रा में, जहां जहां बौद्ध धर्म की ओर प्रवृत्ति थी, इन्हें उदारता से दान दिया था; यहां तक कि जब वह यहां पहुँचा तो उसके पास एक ही सौ फुट की पताका जो महारानी ने दी थी बची थी। इसे उसने शिविकराज स्तूप* पर चढ़ाने का निश्चय किया, और सुंगयुन ने सिओली स्तूप में सेचन मार्जन करने के लिये दो दास दिए। हुईसांग ने यात्रा-धन से जो बचा था उससे एक चतुर चितेरे को ताम्र (पत्र) पर सिओली और शाक्य मुनि के चारों प्रधान स्तूपों† के चित्र खोदने के लिये नियुक्त किया।

'२७—शिविक-राज

तदनंतर उत्तर-पश्चिम सात दिन की यात्रा करके एक महानद (सिंधु) उतरे और उस स्थान पर पहुँचे जहां तथागत ने जब वह शिविकराज थे कबूतर को बचाया था।

---

* यह स्तूप शिवि के स्मरणार्थ अशोक ने बनवाया था। शिवि की कथा जातक में और पुराणों में आई है। उनकी परीक्षा देवराज शक्र ने की थी। दे० फाहियान पर्व ६।

† चारों प्रधान स्तूप ये हैं—१ तक्षशिरास्तूप—जहां शिर का दान किया। २—चक्षुस्तूप—जहां आँख निकाल कर दान की। ३—व्याघ्री-स्तूप—जहां भूखी बाघिन को शरीर दिया। ४—शिविस्तूप—जहां कपोत के बदले मांस दिया।

यहां एक विहार और एक स्तूप है। पूर्व काल में यहां शिविक-राज का एक बड़ा भांडार था जो जल गया था। उसमें के अन्न जो आग से जले थे अब तक आस पास में मिलते हैं। यदि कोई इसका एक दाना भी खा ले तो उसे कभी ज्वर की बाधा नहीं होती। इस देश के लोग लू से बचने* के लिये भी इसे खाते हैं।

'कि का-लाम'† स्तूप का दर्शन किया। इसमें तेरह टुकड़े का बुद्धदेव का कषाय है। नाप में जितना लंबा है उतना ही चौड़ा ‡। यहां बुद्धदेव की एक कुबड़ी भी है—लंबाई १८० चाग (लग भग १८ फुट)। यह काठ की एक नली में है जिस पर सोने के पत्र चढ़े हैं। इस कुबड़ी के भार का कुछ ठिकाना नहीं है, कभी तो वह इतनी भारी हो जाती है कि एक सौ मनुष्य भी नहीं उठा सकते और कभी इतनी हलकी कि एक मनुष्य उठा सकता है। 'नाकी'§

---

* बील टिप्पणी में लिखते हैं 'अथवा उन्हें सूर्य का तेज सहने योग्य करने के लिये।' हमने (Powei of the sun) सूर्य का तेज का अनुवाद 'लू' किया है।

† खक्खरम स्तूप—दे० फाहियान प० १२

‡ बील का मत है कि इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि (or when measured, it is some times long and some times brod) नापने पर कभी लंबा होता है कभी चौड़ा।

§ यह नगरहार है। इसे सुयेनच्वांग ने नाकीलोहो और तावयुग ने नाकालोहो लिखा है। चीनी टिप्पणीकार लिखता है कि 'तावयुग के यात्रा-विवरण में लिखा है कि 'नाका लोहो में बुद्धदेव की एक

नगर में बुद्धदेव का एक दांत और कुछ बाल हैं। दोनों बहु-मूल्य संपुट में धरे हैं। उनकी सायं प्रातः पूजा होती है।

फिर गोपाल-गुहा पर पहुँचे जहां बुद्धदेव की छाया है। पहाड़ी कंदरा में पंद्रह फुट घुसने पर और देर तक* पश्चिम ओर द्वार के सम्मुख देखने पर यह रूप लक्षणों सहित देख पड़ती है। देखने के लिये पास जाने पर वह धीरे धीरे धुंधुली होती जाती है फिर लोप हो जाती है। जहां वह देख पड़ती है टटोलने पर वहां सिवाय दीवालमात्र के कुछ नहीं है। धीरे धीरे पीछे हटने पर रूप फिर दिखाई पड़ता है सब से पहले भौंहों के बीच का चिह्न (ऊर्णा) देख पड़ता है जो मनुष्यों में बहुत कम होता है। इस गुहा के सामने एक चौकोर पत्थर है जिस-पर बुद्धदेव की पादुका है।

२८—गोपाल-गुहा।

गुहा से दक्षिण-पश्चिम एक सौ पग पर वह स्थान है जहां बुद्धदेव ने अपना वस्त्र प्रक्षालन किया था। गुहा से उत्तर एक

कपाल-अस्थि है, चार इंच गोल, पीताभ श्वेत वर्ण, बीच में गड़ा कि मनुष्य की उँगली चली जाय, चमकीली, देखने में भड़ के छत्ते सी'। इस टिप्पणी को बील ने 'किकालाम' से आगे भ्रम वश दिया है।

* बील 'अथवा देर तक'।

† बील टिप्पणी में लिखते हैं—मेरी समझ में इस वाक्य का अर्थ यह है (we begin to see the mark, face-distinguishing, so rare among men) हम मुखड़े की आकृति के चिह्न को देखने लगते हैं जो मनुष्यों में बहुत कम मिलता है।

ली पर मुद्गलायन की पत्थर की गुफा है। इसके उत्तर एक पर्वत है जिसके नीचे महाबुद्ध ने अपने हाथ से एक स्तूप बनाया था। यह दस चांग (११५ फुट) ऊँचा है। कहते हैं कि जब यह स्तूप धँस जायगा और पृथ्वी में समा जायगा तब बुद्ध धर्म का नाश हो जायगा। यहां सात और स्तूप हैं जिनके दक्षिण एक पत्थर है। उस पर एक अभिलेख है। कहते हैं कि इसे बुद्धदेव ने आप लिखा था। विदेशी अक्षर इस समय तक अलग अलग स्पष्ट हैं।

हुईसांग उद्यान जनपद में दो वर्ष ठहरा रहा। पश्चिमी विदेशियों (तातारियों) की रीतियां बहुत कुछ समान हैं। छोटे छोटे भेदों का पूरा पूरा वर्णन नहीं कर सकते। जब चिगयुन * की दूसरे वर्ष का दूसरा महीना आया तब यह देश को लौटा।

४६—कथा कर्ता का उपसंहार

यह विवरण विशेषत तावयुंग और सुगयुन के निज के लेखों से लिया गया है। हुईसाग के बताए विवरण कभी पूरे लिखे ही नहीं गए।

---

* यह शासन काल ५२० ई० से आरम्भ हुआ।

परिशिष्ट

पुरा दृष्ट्वोद्यतां व्याघ्रीं[1] क्षुत्क्षामा पोतभक्षणे ।
तद्रक्षार्थे मया दत्तं शरीरमविचारिणा ॥ १ ॥

शिबिजन्मनि चान्धाय दत्तं नेत्रयुगं मया[2] ।
रक्षितश्च स्वदेहेन कपोतः[3] श्येनकाद्भयात् ॥ २ ॥

चन्द्रप्रभावतारे च रौद्राक्षायार्पितं शिरः[4] ।
सर्वस्वं पुत्रदारादि दत्तं[5] चान्येषु जन्मसु ॥ ३ ॥

अवदान कल्पलता ।

१—व्याघ्रीजातक —प्राचीन काल में ब्राह्मण के कुल में बोधिसत्व ने जन्म ग्रहण किया था। जातकर्मादि संस्कार के अनन्तर जब वह बालक उपवीत संस्कार के योग्य हुआ तो पिता ने उसका यज्ञोपवीत कर आचार्य्य के पास वेदाध्ययन करने के लिये उसे भेजा। बोधिसत्व ने बहुत अल्प काल में वेदवेदाग सारी विद्या पढ ली और आचार्य पद को प्राप्त किया। सब लोग उसका मान करते और उसके उपदेश को बडे चाव से सुनते थे। बोधिसत्व को गृहस्थाश्रम अनेक दोषों का कारण जान पड़ने लगा और उसने स्नातक हो समावर्तन कर घर आ विवाह न कर प्रव्रज्या ग्रहण करने का विचार किया। निदान वह ग्राम को छोड वन में चला गया और वहा अध्ययनाध्यापन करता हुआ तप करने लगा। उसकी विद्या और तप प्रभाव की ख्याति चारों ओर

फैल गई और लोग अपना घर त्याग त्याग उसके पास पर्वत पर विद्याध्ययन करने जाने लगे । वहां बोधिसत्व पर्वत पर जंगलों में रहता और अपने शिष्यों को शिक्षा देता तथा तप और स्वाध्याय करता था । एक दिन वह अपने प्रिय शिष्य अजित के साथ जंगल में फिर रहा था । वहां उसे एक बाघिन पर्वत के नीचे भूखी प्यासी अपने बच्चों को दूध पिलाती देख पड़ी । बाघिन कई दिन की भूखी थी और उस पर बच्चे उसे नोचते और चिल्लाते थे । बाघिन भूख के मारे झोंझियाती और अपने बच्चों पर झुंझलाती और उन्हें खाने पर तुली हुई थी । उसकी यह दशा देख बोधिसत्व ने अजित से कहा—

'पश्य संसारनैर्गुण्यं मृग्येषा स्वसुतानपि ।
लंघितस्नेहमर्य्यादा भोक्तुमन्विच्छति क्षुधा' ॥

अर्थात् संसार की असारता को देखो कि यह बाघिन स्नेह की मर्यादा को छोड़ कर भूख के मारे अपने बच्चों को खाना चाहती है । अतः जहां तक शीघ्र हो सके इसके लिये कुछ खाना लाकर दो, ऐसा न हो कि यह अपने बच्चों को ही खाले वा आप ही भूख के मारे मर जावे । मैं भी कुछ उपाय ढूँढ़ता हूँ । अजित अपने गुरु की आज्ञा पा वन में उसके लिये आहार खोजने गया । बोधिसत्व ने मन में सोचा कि जब मेरा शरीर स्वयं उपस्थित है तब मैं और का मांस कहां ढूँढ़ने जाऊँ, यह शरीर किस काम आवेगा । यह विचार कर बोधिसत्व ने ऊपर से अपने को गिरा दिया और वह व्याघ्री के पास

प्राणरहित जा पडा। बाघिन भी-उसे गिरते देख चौंक कर उठी और अपने बच्चों को छोड उसे खाने लगी। अजित जब उसे कहीं मास न मिला तो निहत्था लौटा और आकर अपने आचार्य्य को खोजने लगा। ढूँढते ढूँढते जब उसने नीचे देखा तो आचार्य्य का शरीर नीचे पडा था और बाघिन उसे खा रही थी। अजित शोक और दु ख से आर्त्त हो आचार्य्य की प्रशसा करता अपने आश्रम पर आया। उसके मुँह से अन्य शिष्यों ने सब बात सुनकर आश्चर्य्य किया और देवताओं ने स्वर्ग से फूल बरसाए।

२—*शिविजातक*—बोधिसत्व ने एक समय शिवि देश में एक राजा का जन्म लिया। राजा बडा उदाचरित और दानशील था। उसने अपने राज में अनेक दानशाला, धर्मसत्र स्थापित किए थे और कोई याचक राजा के पास से विमुख नहीं फिरता था। उसका भाडार सदा दीन दुखियों के लिये खुला रहता था। उसके मन में था कि यदि कोई कभी मेरा शरीर भी माँगे तो मैं उसके देने में आगा पीछा न करूगा। यह शरीर यदि किसी के काम आ जाय तो अच्छा है। उसकी उदारता और दानशीलता देख स्वर्ग काँप उठा। देवराज शक्र का आसन हिल गया। वह उस राजा की दानशीलता की परीक्षा करने चला और शिवि राजा की ... धे बुड्ढे ब्राह्मण का ... के पहुँचा। राजा ... था, निधि का ... था, जो याचक ... जो माँगता

पाता था। अंधा ब्राह्मण राजा के पास गया और आशीर्वाद देकर बोला—

महाराज,

शक्रस्य शक्रप्रतिमानुशिष्ट्या त्वां याचितुं चक्षुरिहागतोऽस्मि।
संभावनां तस्य ममैव चाशां चक्षुःप्रदानात्सफलीकुरुष्व॥

अर्थात् शक्र की आज्ञा से मैं आप से आँख माँगने आया हूँ। मुझे आशा है और उसे संभावना है कि आप उन्हें सफल कीजिएगा। राजा ने शक्र की बात सुन कर यह समझा कि देवता की बात है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मेरी आँख अवश्य इसे लाभकारी होगी। वह अपनी आँख निकाल कर देने को उद्यत हो गया। मंत्रियों ने उसे बहुत रोका और कहा कि यदि देवता चाहते तो इसे स्वयं आँख दे सकते थे, दूसरे की आँख भला इसे कैसे मिल सकेगी। राजा ने उनकी एक बात न मानी और वैद्य से अपनी एक आँख निकलवा उस ब्राह्मण को दे दी और ब्राह्मणरूपधारी शक्र ने उसे अपनी आँख की खोडरी में रख लिया और उसके एक आँख हो गई। राजा उसे एक आँख से देखते देख बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला कि मेरी दूसरी आँख भी निकाल कर इस बूढ़े ब्राह्मण को दे दो कि यह दोनों आँखों से देखने लगे। अस्तु राजा ने अपनी दूसरी आँख भी निकलवा कर उस ब्राह्मण को दे दी। राजा की यह दशा देख सब लोग हाहाकार करने लगे। ब्राह्मण चला गया। फिर राजा अंधा हो अपने बाग में एक

वृक्ष के नीचे पर्य्यंक पर बैठा था कि इसी बीच में देवराज शक्र प्रगट हुए। राजा ने पूछा कि यह कौन आया है। शक्र ने कहा—

शक्रोऽहमस्मि देवेंद्रस्त्वत्समीपमुपागत ।
वर वृणीष्व राजर्षे यदीच्छसि तदुच्यताम् ॥

अर्थात् हे राजर्षि मैं देवराज शक्र हूँ आपके पास आया हूँ, जो चाहिए आप मुझ से वर माँगिए। राजा ने शक्र की यह बात सुन कर कहा—

प्रभूत मे धन शक्र शक्तिमच्च महद्‌बलम् ।
अधभावात्त्विदानीं मे मृत्युरेवाभिरोचते ॥

अर्थात् हे शक्र मेरे धन भी बहुत है और बल भी है पर अब मैं अंधा हूँ अत मुझे मरना ही भला जान पडता है। कारण यह है कि मैं याचकों के मुँह को नहीं देख सकता। शक्र ने कहा इस दशा को प्राप्त होकर भी आप याचकों को ही देखना चाहते हैं। राजा ने कहा हे शक्र व्यर्थ बातें करने से कुछ लाभ नहीं, सुनिए—

तदेव चेत्तर्हि च याचकाना वचासि याञ्चा नियताचराणि ।
आशीर्मयानीव मम प्रियाणि यथा तथोदेतु ममैकचक्षु ॥

अर्थात् यदि मुझे याचकों का आशीर्वाद ही प्रिय हो तो मेरी एक आँख अभी ज्यों की त्यों हो जाय। यह कहते ही राजा की एक आँख ज्यों की त्यों हो गई। फिर राजा ने यह कहा—

यश्चापि मां चक्षुरयाचतैन तस्मै मुदा द्वे नयने प्रदाय ।
प्रीत्युत्सवैकाग्रमतिर्यथासं द्वितीयमप्यक्षि तथा ममास्तु ॥

अर्थात् यदि एक आंख के मांगने पर मैंने हर्षपूर्वक दोनों आंखें दे दी हों तो मेरी दूसरी आँख भी ज्यों की त्यों हो जाय । राजा का कहना था कि राजा की दूसरी आँख भी ज्यों की त्यों हो गई । फिर सारी पृथ्वी कांप उठी, आकाश में देवता दुंदुभि वजाने लगे । देवराज इंद्र राजा को यह आशीर्वाद दे साधु साधु कह सुरलोक सिधारे—

> न नो न विदितो राजस्तव शुद्धाशयाशयः ।
> एवं नु प्रतिदत्ते ते मयेमे नयने नृप ॥
> समन्ताद्योजनशतं शैलैरपि तिरस्कृतम् ।
> द्रष्टुमव्याहता शक्तिर्भविष्यत्यनयोश्च ते ॥

हे राजन् आपका आशय मुझ से छिपा नहीं है इसी लिये मैं आपको यह दो आँखें देता हूँ । आप सौ योजन तक पर्वत की ओट होते हुए भी देखेंगे और आपकी देखने की शक्ति अव्याहत होगी ।

२—श्येन कपोत—राजा शिवि की दयाशीलता की चर्चा स्वर्ग में पहुँची और देवराज शक्र उसकी दया की परीक्षा करने के लिये श्येन और कपोत का रूप धारण कर उसके पास आए । श्येन ने कबूतर का पीछा किया । कपोत भागता हुआ राजा शिवि की गोद मे आकर छिपा । श्येन ने राजा से आकर कपोत की याचना की । राजा ने कहा कपोत मेरी शरण में आया है मैं उसे न दूंगा । श्येन ने कहा मैं कई दिन का उपासा हूँ आज मुझे दैवयोग से यह मिला है, यदि आप इसे भी मुझे न देंगे तो

मेरे तो प्राण चले जायगे। राजा ने कहा मैं तुझे भी मरने न दूगा और न कपोत ही को दूगा। श्येन ने कहा यदि आप मुझे कबूतर के बराबर तौल कर अपना मास दें तो मैं आपकी बात मान जाऊँगा। राजा ने तुला मँगाई और एक पल्ले में कबूतर को रख कर दूसरे पल्ले में अपने शरीर का मांस काट कर रखा पर सारे शरीर का मास काट काट कर चढा देने पर भी वह पल्ला न उठा, अत को राजा स्वय पल्ले में बैठने लगा। फिर देवराज शक्र प्रगट हो गया और राजा का शरीर ज्यों का त्यों हो गया। यह कथा पुराणों मे भी आती है पर उसमें कपोत को अग्नि लिखा है शेष बाते दोनों में ज्यों की त्यों एक ही सी हैं।

४—चद्रप्रभ—हिमालय के पास उत्तर में भद्रशिला नामक एक देश में चद्रप्रभ नामक एक राजा था। उस समय प्राणियों की आयु ४४०:००० वर्ष की होती थी। वह राजा बडा धर्मात्मा और यज्ञशील था। महाचद्र नामक उसका मत्री और महीधर नाम का उसका अमात्य था। दोनों बडे पडित और नीतिसपन्न थे। एक दिन अमात्य और मत्री दोनों ने दु स्वप्न देखा कि दान के व्यसन के कारण राजा विपत्ति में पडा है। दोनों ने उस दु स्वप्न के फल की निवृत्ति के लिये अनेक शाति और स्वस्त्ययन कराए। इसी बीच में रौद्राक्ष नामक एक ब्राह्मण ने राजा के यशगान को सुना। वह पूर्वजन्म का ब्रह्म-राक्षस था। उसे उसका यश सहन न हुआ और उसने अपने मन में यह बात ठान ली कि जिस प्रकार हो सके मैं राजा से

उसका शिर मांगूं और यदि वह न दे तो उसकी कीर्ति में धब्बा लगा दूं और देदे तो उसके मर जाने से मुझे शांति तो मिलेगी कि आगे को उसका यश अधिक न बढ़ेगा। यह विचार कर वह गंधमादन की तराई में भद्रशिला नगर में गया। उसके वहां पहुँचते ही नगर की देवी मनुष्य का रूप धर के राजा के पास गई और कहने लगी कि महाराज एक ब्राह्मण आपका शिर मांगने आता है, मैंने नगर का द्वार बंद कर आपको सूचना कर दी, आप उसे कभी आने मत दीजिए। राजा ने कहा, देवी यह बात अच्छी नहीं है। यदि वह याचक बन के आया तो उसे कभी मत रोकिए, आने दीजिए, मेरे यहां से याचक कभी विमुख नहीं जा सकता। फिर नगर की देवी ने उसे नगर में प्रवेश दे दिया और वह राजा के पास आया। वहाँ आकर रौद्राक्ष ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा, महाराज मुझे जंगल मे एक सिद्धि प्राप्त करनी है उसके लिये चक्रवर्ती के शिर की आवश्यकता है, आप चक्रवर्ती हैं, यदि आप अनुग्रह कर अपना शिर मुझे प्रदान कीजिए तो मेरा अभीष्ट सिद्ध हो। राजा उसकी बात सुन परमानंदित हुआ और कहने लगा मुझ से बढ़के धन्य कौन होगा जिसका जीवन ब्राह्मण की अर्थसिद्धि में काम आवे। राजा की यह बात सुन दोनों मंत्रियों ने राजा से कहा महाराज ब्राह्मण को सोने या रत्न का शिर बनवा कर दे दीजिए और अपना शिर मत दीजिए। पर उस ब्राह्मण ने कहा कि सोने के शिर से काम न चलेगा। यह सुन राजा ने अपने शिर से

मुकुट उतार कर रख दिया और हँसता हुआ आनद से शिर कटाने पर उद्यत हो गया। उद्यान जनपद के देवता यह देख घबड़ा उठे और उसे रोकने लगे पर राजा ने देवताओ को समझा कर अपना शिर बाल की फासी बना चपक वृक्ष पर लटका कर काट के ब्राह्मण को दे दिया।

५—*विश्वतर या सुदान*—शिवि देश मे सजय नामक एक परम धार्मिक राजा था। उसके घर राजकुमार सुदान वा विश्वतर का जन्म हुआ था। राजकुमार बड़ा दयालु और दानशील था। बड़े होने पर जब वह युवराज हुआ तो एक दिन उसने किसी ब्राह्मण को एक गजरथ दान कर दिया। यह गजरथ सोने का बना हुआ और सारे गजरथों में उत्तम था। उसकी यह दानशीलता शिवि जाति को भली न लगी और सब मिल कर राजा के पास गए। राजा ने उस बार कुमार को समझा दिया। पर बहुत दिन नहीं बीते थे कि कुमार को दानशीलता का यश दिग्दिगत में फैल गया।

राजा सजय के यहा एक परम सुदर गधहस्तो था। अन्य राजाओ ने छलपूर्वक उस गधहस्ती को लेने का विचार किया। एक राजा ने कुछ ब्राह्मणो को युवराज से छलपूर्वक उस गधहस्ती की याचना करने के लिये भेजा। युवराज ने पर्व के दिन उपवसथ व्रत कर स्नान किया और वह वस्त्रालकार से विभूषित हो उसी गधहस्ती पर सवार हो अपने सत्रागारों को देखने के लिये चला। उसी समय उस राजा के भेजे ब्राह्मण उसे सत्र पर मिले

और मिलते ही उन्होंने आशीर्वाद दे युवराज से गंधहस्ती की याचना की। राजकुमार ने अपने मन में सोचा कि भला ये ब्राह्मण इस हाथी को लेकर क्या करेंगे, हो न हो किसी राजा ने छलकर इन्हें मुझसे इस हाथी को माँगने के लिये भेजा है। पर युवराज ने फिर सोचा कि ऐसा न हो कि मैं ब्राह्मणों से यदि यह पूछूं कि आप इसे लेकर क्या करेंगे तो कहीं ये ब्राह्मण अपने मन में यह समझें कि मैं लोभवश देने से जी चुराने के कारण ऐसा कर रहा हूँ। फिर कुमार हाथी पर से चट उतर पड़ा और उसने हाथी को ब्राह्मणों को दे दिया।

ब्राह्मण तो हाथी को लेकर अपनी राह गए। जब इस दान का समाचार शिवि लोगों को मिला तो वे सब बिगड़ कर चारों ओर से महाराज संजय के पास पहुँचे और कहने लगे कि महाराज क्या आप अब इसी पर लगे हैं कि सारी राजश्री नष्ट ही हो जाय। आप इस प्रकार राज्य को मिट्टी में न मिला-इए। राजकुमार ने गंधहस्ती को दे डाला। यदि उसकी दान-शीलता अभी ऐसी है तो आगे चल कर वह न जाने क्या कर डालेगा। वह राज्यसिंहासन के योग्य कदापि नहीं है। पहले तो राजा उनकी बात सुन चुप रहा और अपने मन में यह सोचने लगा कि मैं राजकुमार को क्या दंड दूं, पर जब शिवि लोगों ने बहुत आग्रह किया तो उसने कहा कि कहिए अब तो जो कुछ होना था सो हो गया राजकुमार को दंड देने वा मारने पीटने बाँधने आदि से हाथी तो फिर नहीं आता। मैं आगे को विश्वंतर

को डाट डपट दूगा। पर शिवि लोग बिगड पडे और बोले कि महाराज आप युवराज को अवश्य निकाल दें, क्योंकि इतना दयालु राजा हमें नहीं चाहिए। ऐसा धर्मभीरु पुरुष वन में तप करने योग्य है। राज का भार और प्रजा की रक्षा का काम उठाने योग्य कदापि नहीं है। आप कृपा कर युवराज को वक्रगिरि पर तप करने भेज दीजिए। निदान राजा ने उनकी बात मान चत्ता को बुलाया और सारी बातें कुमार के पास कहला भेजीं।

चत्ता कुमार के पास गया और आँखों में आँसू भर कर खडा हुआ। कुमार ने उसे देख पूछा, कुशल तो है? चत्ता ने रोकर कहा कि महाराज की बात न मान कर भी शिवि लोगों ने आपके निर्वासन की आज्ञा दी है। युवराज ने आश्चर्य से कहा—क्या बात है कि शिवि लोगों ने मेरे निर्वासन की आज्ञा दी, कारण तो बतलाओ? चत्ता ने कहा—और कोई कारण नहीं केवल आपकी अति उदारता ही के कारण वे बिगडे हैं। कुमार ने कहा—शिवि लोग चपल स्वभाव के हैं। वे यह नहीं जानते कि बाह्य द्रव्य की तो बात ही क्या है यदि कोई मुझसे मेरी आँख वा मेरा शरीर तक माँगे तो मुझे उसके देने में कोई हिचक नहीं। अस्तु मैं उनकी आज्ञा मान तपोवन जाता हू। यह कह कुमार अत पुर में गया और अपनी पत्नी माद्री से सारी बात उसने कह सुनाई। माद्री ने कहा कि फिर मुझे आप क्या आज्ञा देते हैं? राजकुमार ने कहा तुम यहा रहकर अपने ससुर और सास की सेवा करो और अपने दोनों कुमारों और

कुमार का पालन करो। माद्री ने कहा—महाराज मुझे तो यह भला नहीं जान पड़ता कि आप वंकगिरि पर तप को सिधारें और मैं आप से विलग हो यहां रह जाऊं। मुझे तो आपसे अलग रहना मरने से भी अधिक दुःख का कारण होगा। फिर तो राजकुमार ने अपनी पत्नी और बच्चों को साथ ले जाने का निश्चय किया।

राजकुमार अपना सर्वस्व दान कर अपनी पत्नी माद्री और जालीकुमार और कृष्णाजिना कुमारी को साथ ले रथ पर चढ़ वंकगिरि को चला। राजकुल में चारों ओर हाहाकार मच गया। कुछ दूर चला था कि ब्राह्मणों ने आकर रथ के घोड़ों की याचना की। कुमार ने घोड़ों को तुरंत उनको दे दिया। फिर यह दशा देख चार यक्षकुमार रोहित मृग का रूप धर के आए और कुमार का रथ खींचने लगे। यह देख बोधिसत्व ने माद्री की ओर देखके कहा—

> तपोधनाध्यासनसत्कृतानां, पश्य प्रभावातिशयं वनानाम् ।
> यत्रैवमभ्यागतवत्सलत्वं, संरूढमूलं मृगपुंगवेषु ।

अर्थात् यह तपस्वियों के यहां रह कर तप करने का प्रभाव है कि अतिथि को देख ये मृग आकर हमारा रथ खींच रहे हैं। रथ कुछ और आगे चला था कि ब्राह्मणों ने आकर रथ की याचना की और कुमार उन्हें रथ दे जाली को गोद में लिए आगे आगे आप और पीछे पीछे कृष्णाजिना को गोद में लिए माद्री के साथ पैदल वंकगिरि को चला। दोनों इस प्रकार पैदल जाकर वंक पर्वत के किनारे पहुँचे। वहां की शोभा अकथनीय थी।

वहीं पर वह एक पर्णशाला में अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रह कर वह तप करने लगा।

एक दिन माद्री वन में मूल फल के लिये गई थी कि इसी बीच में एक ब्राह्मण आया और कुमार को आशीर्वाद दे कहने लगा कि महाराज मेरे घर कोई काम काज करनेवाला नहीं है आप अपने इन दोनों बालकों को मुझे दे दीजिए। कुमार ने कहा—हां आप इन्हें ले जाइए पर तनिक ठहर जाइए, इनकी माता आ लेवे तब। वह मूल फल लेने गई है और अभी आती ही होगी। पर ब्राह्मण ने एक न माना। उसने कहा कि इनकी माता आ जायगी तो आपके दान में विघ्न पड़ जायगा। कुमार ने भी अपने कन्या पुत्र को उचित शिक्षा दे उसको सौंप दिया। ब्राह्मण उनको घुड़क कर बोला, बस अब चलो। दोनो पिता को प्रणाम कर कहने लगे कि माता बाहर गई है आपने बीच ही मे हमें इसे दे दिया अब माता आ जायँ तब आप हमें दीजिएगा। फिर ब्राह्मण उन दोनों के हाथों को लता से बांध कर खींच ले चला। आँखों में आसू भरे वे दोनो अपने पिता का मुँह देखते रहे। कृष्णाजिना चिल्लाती थी कि ब्राह्मण मुझे लता से पीट रहा है। यह ब्राह्मण नहीं है कोई यक्ष है। हम दोनो को खाने के लिये ले जा रहा है। बेचारा जाली चिल्लाता था कि मुझे तो इसके मारने का उतना दुःख नहीं जितना यह दुःख है कि मैंने अपनी माता को चलते बार नहीं देखा। इस प्रकार दोनों विलखते थे और निर्दयी ब्राह्मण उन्हें घसीटे लिये जाता था। राजकुमार

को उन दोनों की दशा देख करुणा आई पर करे तो क्या करे, मुँह से बात निकल जाने के कारण कुछ कर नहीं सकता था।

माद्री बेचारी को उसी दिन मार्ग में सिंह मिला। इस कारण वह आगे न गई और तुरंत मूल फल जो उसे मिले लेकर अपने आश्रम को लौटी। कहते हैं कि देवराज इंद्र सिंहवन कर उसे आगे जाने से रोकने के लिये उसका मार्ग छेंक कर बैठे थे। जब माद्री आई तो अपने आश्रम पर अपने बालकों को न देख उसने कुमार से पूछा कि लड़के कहां हैं। कुमार चुप रहा। फिर तो माद्री ने समझा कि कुछ अकुशल की बात है। वह भीतर मूल फल को डाल दुःख के मारे कातर हो गिर पड़ी। राजकुमार ने दौड़ कर जल ले उसके मुँह पर छींटे दिए और जब उसे चेत हुआ तो सारा समाचार कह सुनाया। वह आँखें पोंछ दुखी हो बोली—आश्चर्य्य की बात है! मैं क्या कहूं।

कुमार की दानशीलता देख स्वर्ग काँप उठा और देवराज शक्र उसकी दानशीलता की परीक्षा लेने के लिये दूसरे दिन ब्राह्मण का रूप धर के आए और उन्होंने विश्वंतर से माद्री के लिये याचना की। राजकुमार ने बायें हाथ से माद्री को और दहिने हाथ से कमंडलु लेकर उसका दान कर दिया। माद्री ने न तो क्रोध किया और न रोई। वह उसके स्वभाव को जान कर चुप रह गई। देवराज यह देख विस्मय कर उनकी प्रशंसा करता हुआ प्रगट हुए और बोले—

तुभ्यमेव प्रयच्छामि माद्रीं भार्य्यामिमामहम्।
व्यतीत्य नहि शीतांशु चन्द्रिका स्यातुमर्हसि ॥१॥
तन्मा चिन्ता पुत्रयोर्विप्रयोगाद्राज्यभ्रंशान्मा च संतापमागाः।
सार्धं ताभ्यामभ्युपेत पिता ते कर्ता राज्य स्वस्सनाथ सनाथम् ॥

अर्थात् माद्री को आप ही लीजिए, चद्रमा का छोड़ चाँदनी अन्यत्र नहीं रह सकती। आप अपने लडकों की चिंता न करें और न राज्य के छूटने का कुछ सोच कीजिए। वे आप के पिता के पास पहुँच जायँगे और आप राज के करनेवाले होंगे।

शक्र यह कह वहीं अतर्धान हो गए। वह ब्राह्मण उन दोनों लडकों को शिवि के राज मे ले गया और राजा सजय के हाथ बेच आया। राजा सजय ने कुमार के अद्भुत यश को सुना और विश्वतर को शिवि लोगों की अनुज्ञा से बुलाया और उसे अपना उत्तराधिकारी किया। अवदानकल्पलता में सजय का नाम विश्वामित्र लिखा है। ये, शिवि, विदेहादि के समान व्रात्य थे, शालीन नहीं थे। इनमे एकाधिपत्य नहा था, अपि तु 'गण' की प्रथा थी, इनमें सब काम जाति भर की सम्मति के अनुसार होता था। वर्णभेद भी नहीं था।